कुदरती उपचार

गांधीजी



नवजीवन प्रकाशन मंदिर
अहमदाबाद-३८००१४

सम्पादकका निवेदन

गांधीजीका जीवनमें बहुत पहलेसे ही आधुनिक दवाइयोंमें विश्वास नहीं रहा था। उनका यह पक्का विश्वास था कि अच्छा स्वास्थ्य बनाये रखनेके लिए केवल इतना ही करना जरूरी है: आहारके सम्बन्धमें मनुष्य कुदरतके नियमोंका पालन करे, शुद्ध और ताजी हवाका सेवन करे, नियमित कसरत करे, साफ-स्वच्छ वातावरणमें रहे और अपना हृदय शुद्ध रखे। ऐसा करनेके बजाय आज मनुष्यको आधुनिक चिकित्सा-पद्धतिके कारण जी भरकर विषय-भोगमें लीन रहनेका, स्वास्थ्य और सदाचारका हर नियम तोड़नेका और उसके बाद केवल व्यापारके लिए तैयार की जानेवाली दवाइयोंके जरिये शरीरका इलाज करनेका प्रलोभन मिलता है। इसके प्रति मनमें विद्रोहकी भावना होनेके कारण गांधीजीने अपने लिए दवाइयोंके उपयोगके बिना रोगों पर विजय पानेका मार्ग खोजनेका प्रयत्न किया।

इसके सिवा, आजकी चिकित्सा-पद्धति रोगको केवल शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाली चीज मानकर उसका उपचार करना चाहती है। परन्तु गांधीजी तो मनुष्यको उसके संपूर्ण और समग्र रूपमें देखते थे। इसलिए वे अनुभवसे ऐसा मानते थे कि शरीरकी बीमारी मुख्यतः मानसिक या आध्यात्मिक कारणोंसे होती है और उसका स्थायी उपचार केवल तभी हो सकता है जब जीवनके प्रति मनुष्यका संपूर्ण दृष्टिकोण ही बदल जाय। इसलिए उनकी रायमें शरीरके रोगोंका उपचार मुख्यतः आत्माके क्षेत्रमें, ब्रह्मचर्य द्वारा सिद्ध होनेवाले आत्म-संयम तथा आत्मजयमें, स्वास्थ्यके विषयमें कुदरतके नियमोंके ज्ञानपूर्ण पालनमें तथा स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मनके लिए अनुकूल भौतिक और सामाजिक वातावरण निर्माण करनेमें खोजा जाना चाहिये। अतः कुदरती उपचारकी गांधीजीकी कल्पना उस अर्थसे कहीं अधिक व्यापक है, जो आज उस शब्दसे सामान्यतः समझा जाता है। कुदरती उपचार रोगके हो जानेके बाद केवल उसे मिटानेकी पद्धति नहीं है, परन्तु कुदरतके नियमोंके अनुसार जीवन बिताकर रोगको पूरी तरह

रोकनेका प्रयत्न है। और, गांधीजी मानते थे कि कुदरतके नियम वही हैं, जो ईश्वरके नियम है। इस दृष्टिसे रोगके कुदरती उपचारमें केवल मिट्टी, पानी, हवा, धूप, उपवासों तथा ऐसी दूसरी वस्तुओंके उपयोगका ही समावेश नहीं होता, बल्कि इससे भी अधिक उसमें रामनाम अथवा ईश्वर-श्रद्धा या ईश्वरके कानूनके द्वारा हमारे शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक — संपूर्ण जीवनको बदल डालनेकी बात आती है। इसलिए रामनाम गांधीजीकी दृष्टिमें केवल ऐसा जादू नहीं है, जो मुंहसे बोलते ही कोई चमत्कार कर दिखायेगा। जैसा कि कहा जा चुका है, रामनाम जपनेका अर्थ है मनुष्यके हृदयका तथा उसकी जीवन-पद्धतिका संपूर्ण परिवर्तन, जिससे ईश्वरके साथ उसका मेल सधता है और संपूर्ण जीवनके मूल स्रोत ईश्वरसे वह ऐसी शक्ति और ऐसा जीवन प्राप्त करता है, जो रोगों पर सदा ही विजयी सिद्ध होते हैं।

गांधीजीके उद्धरणोंको प्रकरणोंके रूपमें व्यवस्थित करते समय मूल लेखोंके शीर्षक देकर विचारमें बाधा डालना ठीक नहीं मालूम हुआ; और पुनरुक्तिसे बचनेके लिए उनके सारे लेख या सारे भाषण पुस्तकमें नहीं लिये गये हैं।

जो उद्धरण 'यंग इंडिया', 'हिन्दी नवजीवन', 'हरिजन' और 'हरिजन-सेवक' से लिये गये हैं, उनके साथ छपनेकी तारीखें दी गई हैं। जहां तक 'हिन्द स्वराज्य', 'आत्मकथा' और 'आरोग्यकी कुंजी' के उद्धरणोंका सम्बन्ध है, उनके साथ इन पुस्तकोंके (हिन्दी) संस्करणोंके पृष्ठ और वर्ष दिये गये हैं।

उरुलीकांचन कुदरती उपचार केन्द्रमें काम करनेवाले कार्य-कर्ताओंको लिखे गये गांधीजीके पत्रोंके उद्धरण तथा केन्द्रकी जानकारी परिशिष्टोंके रूपमें दी गई है।

जो पाठक स्वास्थ्य-सम्बन्धी गांधीजीके विचारोंका अधिक विस्तारसे अध्ययन करना चाहते हैं, वे इस पुस्तकके साथ गांधीजी द्वारा लिखित 'आरोग्यकी कुंजी' नामक पुस्तक भी पढ़ें तो अच्छा होगा।

बम्बई, अगस्त १९५४ भारतन् कुमारप्पा

अनुक्रमणिका

पाठकोंसे

मेरे लेखोंका मेहनतसे अध्ययन करनेवालों और उनमें दिलचस्पी लेनेवालोंसे मैं यह कहना चाहता हूं कि मुझे हमेशा एक ही रूपमें दिखाई देनेकी कोई परवाह नहीं है। सत्यकी अपनी खोजमें मैंने बहुतसे विचारोंको छोड़ा है और अनेक नई बातें मैं सीखा भी हूं। उमरमें भले मैं बूढ़ा हो गया हूं। लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगता कि मेरा आन्तरिक विकास होना बन्द हो गया है या देह छूटनेके बाद मेरा विकास बन्द हो जायगा। मुझे एक ही बातकी चिन्ता है, और वह है प्रतिक्षण सत्य-नारायणकी वाणीका अनुसरण करनेकी मेरी तत्परता। इसलिए जब किसी पाठकको मेरे दो लेखोंमें विरोध जैसा लगे तब अगर उसे मेरी समझदारीमें विश्वास हो, तो वह एक ही विषय पर लिखे दो लेखोंमें से मेरे बादके लेखको प्रमाणभूत माने।

हरिजनबन्धु, ३०-४-'३३

— गांधीजी

१

प्रास्ताविक

डॉक्टरोंने हमें जड़से हिला दिया है। डॉक्टरोंसे तो नीम-हकीम अच्छे, ऐसा कभी कहनेका मेरा मन होता है। हम इस पर कुछ विचार करें। डॉक्टरोंका काम सिर्फ शरीरको संभालनेका है; और शरीरको संभालनेका है, ऐसा कहना भी ठीक नहीं। उनका काम शरीरमें जो रोग पैदा होते हैं उन्हें दूर करनेका है। रोग क्यों होते हैं? हमारी ही गफलतसे होते हैं। मैं बहुत खाऊं और मुझे बदहजमी हो जाय, अजीरन हो जाय; फिर मैं डॉक्टरके पास जाऊं और वह मुझे गोली दे; गोली खाकर मैं चंगा हो जाऊं और दुबारा खूब खाऊं और फिरसे डॉक्टरकी गोली लूं। इसमें जो कुछ हुआ वह इस तरह हुआ। मगर मैं गोली न लेता तो अजीरनकी सजा भुगतता और फिरसे बेहद नहीं खाता। लेकिन डॉक्टर बीचमें आया और उसने हदसे ज्यादा खानेमें मेरी मदद की। उससे मेरे शरीरको तो आराम हुआ, लेकिन मेरा मन कमजोर बना। इस तरह दवा लेते-लेते आखिर मेरी यह हालत होगी कि मैं अपने मन पर जरा भी काबू न रख सकूंगा।

मैंने विलास किया — जरूरतसे ज्यादा खाया, मैं बीमार पड़ा, डॉक्टरने मुझे दवा दी और मैं चंगा हुआ। लेकिन क्या मैं फिरसे विलास नहीं करूंगा? जरूर करूंगा। अगर डॉक्टर बीचमें न आता, तो कुदरत अपना काम करती, उससे मेरा मन मजबूत बनता और अन्तमें निर्विषयी होकर मैं सुखी होता।

अस्पताल पापकी जड़ हैं। उनकी बदौलत लोग शरीरका जतन कम करते हैं और अनीतिको बढ़ाते हैं। यूरोपके डॉक्टर तो हद कर देते हैं। वे सिर्फ शरीरके ही गलत जतनके लिए लाखों जीवोंको हर साल

मारते हैं, जिंदे प्राणियों पर प्रयोग करते हैं। ऐसा करना किसी भी धर्मको स्वीकार नहीं है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जरथोस्ती — सब धर्म कहते हैं कि आदमीके शरीरके लिए इतने जीवोंको मारनेकी जरूरत नहीं है।

डॉक्टर हमें धर्मभ्रष्ट करते हैं। उनकी बहुतसी दवाओंमें चरबी या शराब होती है। इन दोनोंमें से एक भी चीज ऐसी नहीं है, जिसे हिन्दू या मुसलमान ले सकें। हम सभ्य बननेका ढोंग करके, दूसरोंको वहमी मानकर और बे-लगाम होकर चाहे जो करते रहें, यह दूसरी बात है। लेकिन डॉक्टर हमें धर्मसे भ्रष्ट करते हैं, यह तो साफ और सीधी बात है।

इसका परिणाम यह आता है कि हम निःसत्व और नामर्द बनते हैं। ऐसी दशामें हम लोकसेवा करने लायक नहीं रहते और शरीरसे क्षीण तथा बुद्धिहीन होते जाते हैं। अंग्रेजी या यूरोपियन पद्धतिकी डॉक्टरी सीखना गुलामीकी गांठको मजबूत करने जैसा ही होगा।

हम डॉक्टर क्यों बनते हैं, यह भी एक सोचनेकी बात है। उसका सच्चा कारण तो प्रतिष्ठावाला और पैसा कमानेका धंधा करनेकी हमारी इच्छा है; उसमें परोपकारकी बात नहीं है। उस धंधेमें सच्चा परोपकार नहीं है, यह तो मैं बता चुका हूं। उससे लोगोंको नुकसान होता है। डॉक्टर सिर्फ आडम्बर दिखाकर ही लोगोंसे बड़ी-बड़ी फीसें वसूल करते हैं और अपनी एक पैसेकी दवाके कई रुपये लेते हैं। यों विश्वासके कारण और चंगे हो जानेकी आशामें लोग उनसे ठगे जाते हैं। जब ऐसा ही है तब भलाईका दिखावा करनेवाले डॉक्टरोंसे खुले ठग-वैद्य ज्यादा अच्छे माने जायेंगे।

हिन्द स्वराज्य, पृ० ४२-४३; १९५९

यदि मैं अपने विचारों पर भी पूरी विजय पा सका होता, तो पिछले दस बरसोंमें जो तीन रोग — पसलीका वरम (प्लूरिसी), पेचिश

और 'एपेण्डिक्स' — मुझे हुए वे कभी न होते।* मैं मानता हूं कि नीरोग आत्माका शरीर भी नीरोग होता है। अर्थात् ज्यों-ज्यों आत्मा नीरोगी — निर्विकार होती जाती है, त्यों-त्यों शरीर भी नीरोग होता जाता है। लेकिन यहां नीरोग शरीरके मानी बलवान शरीर नहीं है। बलवान आत्मा क्षीण शरीरमें ही वास करती है। ज्यों-ज्यों आत्मबल बढ़ता है, त्यों-त्यों शरीरकी क्षीणता बढ़ती है। पूर्ण नीरोग शरीर बिलकुल क्षीण भी हो सकता है। बलवान शरीरमें अधिकतर रोगोंका वास होता है। रोग न हों तो भी वह शरीर संक्रामक रोगोंका शिकार तुरन्त ही हो जाता है। परन्तु पूर्ण नीरोग शरीर पर उनका असर नहीं हो सकता। शुद्ध खूनमें जन्तुओंको दूर रखनेका गुण होता है।

हिन्दी नवजीवन, २५–५–'२४

---

* मैं तो पूर्णताका एक विनीत साधकमात्र हूं। मै उसका मार्ग भी जानता हूं। परन्तु मार्ग जाननेका अर्थ यह नहीं है कि मैं आखिरी मंजिल पर पहुंच गया हूं। यदि मैं पूर्ण पुरुष होता, यदि मैं विचारोंमें भी अपने तमाम मनोविकारों पर पूरा आधिपत्य जमा पाया होता, तो मेरा शरीर पूर्णताको पहुंच गया होता। मैं कबूल करता हूं कि अभी मुझे अपने विचारोंको वशमें रखनेके लिए बहुत मानसिक शक्ति खर्च करनी पड़ती है। यदि कभी मैं इस प्रयत्नमें सफल हो सका, तो खयाल कीजिये कि शक्तिका कितना बड़ा खजाना मुझे सेवाके लिए खुला मिल जायगा। मैं मानता हूं कि मेरी एपेंडिसाइटिसकी बीमारी मेरे मनकी दुर्बलताका फल थी और ऑपरेशन करवानेके लिए तैयार हो जाना भी मनकी दुर्बलता ही थी। यदि मेरे अंदर अहंकारका पूरा अभाव होता, तो मैंने अपनेको होनहारके सुपुर्द कर दिया होता। लेकिन मैं तो अपने इसी शरीरमें रहना चाहता था। पूर्ण विरक्ति किसी यांत्रिक क्रियासे प्राप्त नहीं होती। उस स्थितिमें पहुंचनेके लिए धैर्यपूर्ण परिश्रम और ईश्वरकी प्रार्थनाकी आवश्यकता होती है।

हिन्दी नवजीवन, ६–४–'२४

ब्रह्मचर्यके बिना, अर्थात् वीर्य-संग्रहके बिना, पूर्ण आरोग्यकी रक्षा भी अशक्य-सी समझना चाहिये। जिस वीर्यमें दूसरे मनुष्यको पैदा करनेकी शक्ति है, उस वीर्यका स्खलन होने देना महान अज्ञानकी निशानी है। वीर्यका उपयोग भोगके लिए नहीं, परन्तु केवल प्रजोत्पत्तिके लिए है। यह हम पूरी तरह समझ लें, तो विषयासक्तिके लिए जीवनमें कोई स्थान ही नहीं रह जायगा। स्त्री-पुरुष-संगके खातिर नर-नारी दोनों आज जिस तरह अपना सत्यानाश करते हैं वह बन्द हो जायगा, विवाहका पूरा अर्थ ही बदल जायगा और उसका जो स्वरूप आज देखनेमें आता है, उसकी ओर हमारे मनमें तिरस्कार पैदा होगा। विवाह स्त्री-पुरुषके बीच हार्दिक और आत्मिक ऐक्यकी निशानी होना चाहिये। विवाहित स्त्री-पुरुष यदि प्रजोत्पत्तिके शुभ हेतुके बिना कभी विषय-भोगका विचार तक न करें, तो वे पूर्ण ब्रह्मचारी माने जानेके लायक हैं। ऐसा भोग पति-पत्नी दोनोंकी इच्छा होने पर ही हो सकता है। वह आवेशमें आकर नहीं होगा; कामाग्निकी तृप्तिके लिए तो कभी होगा ही नहीं। मगर उसे कर्त्तव्य मानकर किया जाय, तो उसके बाद फिर भोगकी इच्छा भी पैदा नहीं होनी चाहिये।

नित्य उत्पन्न होनेवाले वीर्यका हमें अपनी मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक शक्ति बढ़ानेमें उपयोग करना चाहिये। जो मनुष्य ऐसा करना सीख लेता है, वह प्रमाणमें बहुत कम खुराकसे अपना शरीर बना सकेगा। अल्पाहारी होते हुए भी वह शारीरिक श्रममें किसीसे कम नहीं रहेगा। मानसिक श्रममें उसे कमसे कम थकान मालूम होगी। बुढ़ापेके सामान्य चिह्न ऐसे ब्रह्मचारीमें देखनेको नहीं मिलेंगे। जैसे पका हुआ पत्ता या फल वृक्षकी टहनी परसे स्वभावतः गिर पड़ता है, वैसे ही समय आने पर ऐसे मनुष्यका शरीर सारी शक्तियां रखते हुए भी गिर जायेगा। ऐसे मनुष्यका शरीर समय बीतने पर देखनेमें भले क्षीण लगे, मगर उसकी बुद्धिका तो क्षय होनेके बदले नित्य विकास ही होना चाहिये और उसका तेज भी बढ़ना चाहिये। ये चिह्न जिस मनुष्यमें नहीं पाये जाते, उसके ब्रह्मचर्यमें उतनी कमी समझना

चाहिये। उसने वीर्य-संग्रहकी कला हस्तगत नहीं की है। यह सब अगर सच हो — और मेरा दावा है कि सच है — तो आरोग्यकी सच्ची कुंजी वीर्य-संग्रहमें है।

आरोग्यकी कुंजी, पृ० ३२–३४; १९५८

कुदरती उपचार करनेवाला प्राकृतिक उपचारक रोगीको उसके रोगके लिए कोई जड़ी-बूटी नहीं बेचता। वह तो अपने रोगीको जीवन जीनेका ऐसा तरीका सिखाता है, जिससे रोगी अपने घरमें रहकर अच्छी तरह जीवन बिता सके और आगे कभी बीमार न पड़े। वह अपने रोगीकी खास तरहकी बीमारीको मिटाकर ही सन्तुष्ट नहीं हो जाता। मामूली डॉक्टरों या वैद्योंको ज्यादातर इतनी ही दिलचस्पी रहती है कि वे अपने रोगियोंके रोगको और उसके लक्षणोंको समझ लें, उसका इलाज ढूंढ़ निकालें और इस तरह सिर्फ रोग-सम्बन्धी बातोंका ही अभ्यास करें। इसके खिलाफ, कुदरती उपचार करनेवालेको तन्दुरुस्तीके नियमोंका अभ्यास करनेमें ज्यादा दिलचस्पी होती है। जहां साधारण डॉक्टरकी दिलचस्पी खतम हो जाती है, वहां कुदरती उपचारके डॉक्टरकी सच्ची दिलचस्पी शुरू होती है। कुदरती उपचारकी पद्धतिसे रोगीकी बीमारीको बिलकुल मिटा देनेके साथ ही उसके लिए एक ऐसी जीवन-पद्धतिका आरंभ होता है, जिसमें बीमारीके लिए कोई गुंजाइश ही नहीं रह जाती। इस तरह कुदरती उपचार जीवन जीनेकी एक पद्धति है, रोग मिटानेके उपचारोंकी पद्धति नहीं। कुदरती उपचारके लिए यह दावा नहीं किया जाता कि उससे सब बीमारियां दूर होती हैं। दवा-दारूका ऐसा कोई भी तरीका नहीं है, जिससे सब रोग मिट ही जाते हों। अगर ऐसा होता तो हम सब अमर न हो जाते?

हरिजनसेवक, ७–४–'४६

२

कुदरती उपचारकी पद्धति

जिन पांच तत्त्वोंसे यह मनुष्यरूपी पुतला बना है, वे ही नैसर्गिक उपचारोंके साधन हैं। पृथ्वी (मीट्टी), पानी, आकाश (अवकाश), तेज (सूर्य) और वायुसे यह शरीर बना है। इन्हीं साधनोंका उपयोग यहां क्रमसे बतानेकी मैंने कोशिश की है।

सन् १९०१ तक जब मुझे कोई भी व्याधि होती थी, तब मैं डॉक्टरोंके पास तो भागता नहीं जाता था, मगर उनकी दवाका थोड़ा उपयोग जरूर कर लेता था। एक-दो दवायें मुझे स्वर्गीय डॉक्टर प्राण-जीवन मेहताने बताई थीं। मैं नेटालके एक छोटेसे अस्पतालमें काम करता था। कुछ अनुभव मुझे वहांसे मिला और कुछ इस सम्बन्धका साहित्य पढ़नेसे। मुझे खास तकलीफ कब्जियतकी रहती थी। उसके लिए समय-समय पर मैं फ्रुट सॉल्ट लेता था। उससे कुछ आराम तो मुझे मिलता था, मगर कमजोरी मालूम होती थी, सिरमें दर्द होने लगता था और दूसरे भी छोटे-मोटे उपद्रव होते रहते थे। इसलिए डॉक्टर प्राणजीवन मेहताकी बताई हुई दवा लोह (डायलाइज्ड आयरन) और नक्सवोमिका मैं लेने लगा। दवा पर मेरा विश्वास बहुत कम था। इसलिए लाचार हो जाने पर ही मैं दवा लेता था। परन्तु इससे संतोष नहीं होता था।

इस सारे अरसेमें मेरे खुराकके प्रयोग तो चल ही रहे थे। नैसर्गिक उपचारोंमें मुझे काफी विश्वास था। मगर इस बारेमें मुझे किसीकी मदद नहीं मिलती थी। इधर-उधरसे जो-कुछ मैंने पढ़ लिया था, उसीके आधार पर मुख्यतः भोजनमें फेरबदल करके मैं काम चला लेता था। मैं खूब घूम लेता था, इस कारण खाट पर मुझे कभी पड़ना नहीं पड़ा। इस तरह मेरी ढीली-ढाली गाड़ी चला

करती थी। ऐसे समयमें जुस्टकी 'रिटर्न टु नेचर' नामकी पुस्तक भाई पोलाकने मुझे पढ़नेको दी।

आरोग्यकी कुंजी, पृ० ३९–४०; १९५८

१. पृथ्वी

उस पुस्तकमें खास जोर मिट्टीके उपयोग पर दिया गया है। मुझे लगा कि उसका उपयोग मुझे कर लेना चाहिये। जुस्टने कब्जियतमें मिट्टीको ठंडे पानीमें भिगोकर बगैर कपड़ेके सीधे पेडू पर रखनेकी सूचना की है। मगर मैंने तो एक बारीक कपड़ेमें पुलटिसकी तरह मिट्टीको लपेटकर सारी रात अपने पेडू पर रखा। सवेरे उठा तो दस्तकी हाजत मालूम हुई। पाखाने जाते ही बंधा हुआ सन्तोषकारी दस्त हुआ। यह कहा जा सकता है कि उस दिनसे लेकर आज तक फ्रुट सॉल्टको मैंने शायद ही कभी छुआ होगा। आवश्यक मालूम होने पर कभी-कभी मैं अरंडीका छोटा पौना चम्मच तेल सवेरे जरूर ले लेता हूं। मिट्टीकी वह पट्टी तीन इंच चौड़ी, छह इंच लम्बी और बाजरेकी रोटीसे दुगुनी मोटी या यह कहो कि आध इंच मोटी होती है। जुस्टका यह दावा है कि जिसे जहरीले सांपने काटा हो, उसे गढ़ा खोदकर उसमें मिट्टीसे ढंककर सुला देनेसे जहर उतर जाता है। यह दावा सच्चा साबित हो सके या न हो सके, परन्तु मैंने स्वयं जो मिट्टीके प्रयोग किये हैं उन्हें यहां कह दूं। मेरा अनुभव है कि सिरमें दर्द होता हो तो मिट्टीकी पट्टी सिर पर रखनेसे बहुत करके फायदा होता है। यह प्रयोग मैंने सैकड़ों लोगों पर किया है। मैं जानता हूं कि सिरदर्दके अनेक कारण हो सकते हैं। परन्तु सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि किसी भी कारणसे सिरदर्द क्यों न हो, मिट्टीकी पट्टी सिर पर रखनेसे तात्कालिक लाभ तो होता ही है।

सामान्य फोड़े-फुन्सीको मिट्टी मिटा देती है। मैंने तो बहते हुए फोड़ों पर भी मिट्टी रखी है। ऐसे फोड़े पर मिट्टी रखनेसे पहले मैं साफ कपड़ेको परमेंगनेटके गुलाबी पानीमें भिगोता हूं, फोड़ेको

अच्छी तरह साफ करता हूं और फिर उस पर मिट्टीकी पुलटिस रखता हूं। इससे अधिकांश फोड़े मिट ही जाते हैं। जिन पर मैंने यह प्रयोग किया है, उनमें से एक भी केस निष्फल रहा हो ऐसा मुझे याद नहीं आता। बर्र वगैराके डंक पर मिट्टी तुरन्त फायदा करती है। बिच्छूके डंक पर भी मैंने मिट्टीका खूब प्रयोग किया है। सेवाग्राममें बिच्छूका उपद्रव आये दिनकी बात हो गयी है। बिच्छूके जितने इलाजोंका पता लगा है, वे सब सेवाग्राममें आजमा कर देखे गये हैं। मगर उनमेंसे किसीको भी अचूक नहीं कहा जा सकता। मिट्टी इनमें किसीसे भी कम साबित नहीं हुई।

सख्त बुखारमें मिट्टीका उपयोग पेड़ू पर रखनेके लिए और सिरमें दर्द हो तो सिर पर रखनेके लिए मैंने किया है। मैं यह नहीं कह सकता कि इससे हमेशा बुखार उतरा ही है, मगर रोगीको उससे आराम और शांति जरूर मिलती है। टाइफाइडमें मैंने मिट्टीका खूब प्रयोग किया है। वह बुखार अपनी मुद्दत लेकर ही जाता था, मगर मिट्टीसे रोगीको हमेशा आराम और शांति मिलती थी। सब रोगी खुद ही मिट्टीकी मांग करते थे। सेवाग्राम आश्रममें टाइफाइडके दसेक केस हो चुके हैं। लेकिन उनमें से एक भी केस नहीं बिगड़ा। सेवाग्राममें अब टाइफाइडसे लोग डरते नहीं हैं। मैं कह सकता हूं कि एक भी केसमें मैंने दवाका उपयोग नहीं किया। मिट्टीके सिवा दूसरे नैसर्गिक उपचारोंका उपयोग मैंने जरूर किया है, मगर उनकी चर्चा उनके अपने स्थान पर करूंगा।

मिट्टीका उपयोग सेवाग्राममें एन्टीफ्लोजिस्टीनकी जगह पर छूटसे हुआ है। उसमें थोड़ा सरसोंका तेल और नमक मिलाया जाता है। इस मिट्टीको अच्छी तरह गरम करना पड़ता है। इससे वह बिलकुल निर्दोष बन जाती है।

उपचारकी मिट्टी कैसी होनी चाहिये, यह कहना अभी बाकी है। मेरा पहला परिचय तो अच्छी गंधवाली लाल मिट्टीसे हुआ था। पानी मिलाने पर उसमें से सुगन्ध निकलती है। ऐसी मिट्टी आसानीसे नहीं मिलती। बम्बई जैसे शहरमें तो किसी भी तरहकी मिट्टी पाना

मेरे लिए कठिन हो गया था। मिट्टी न तो बहुत चिकनी होनी चाहिये और न बिलकुल रेतीली। खादवाली तो वह कभी न होनी चाहिये। वह रेशमकी तरह मुलायम हो और कंकरी उसमें बिलकुल न रहे। इसके लिए उसे बारीक छलनीसे छान लेना अच्छा है। अगर बिलकुल साफ न लगे तो मिट्टीको सेंक लेना चाहिये। मिट्टी बिलकुल सूखी होनी चाहिये। अगर गीली हो तो उसे धूपमें या अंगीठी पर सुखा लेना चाहिये। साफ भाग पर इस्तेमाल की हुई मिट्टी सुखाकर बार-बार इस्तेमाल की जा सकती है। इस तरह बार-बार इस्तेमाल करनेसे मिट्टीका कोई गुण कम होता हो तो मैं नहीं जानता। मैंने मिट्टीका इस तरह इस्तेमाल किया है, और मेरे अनुभवमें यह नहीं आया कि उसका कोई गुण कम हुआ है। मिट्टीका उपयोग करनेवालोंसे मैंने सुना है कि यमुनाके किनारे जो पीली मिट्टी मिलती है, वह बहुत गुणकारी होती है।

मिट्टी खाना : जुस्टने लिखा है कि साफ बारीक समुद्रकी रेती दस्त लानेके लिए उपयोगमें ली जाती है। मिट्टी किस तरह काम करती है, इसके बारेमें उसने बताया है कि मिट्टी पचती नहीं; उसे कचरे (refuse) की तरह बाहर निकलना ही पड़ता है। और बाहर निकलते समय अपने साथ वह मलको भी बाहर निकालती है। लेकिन इसका मैंने स्वयं कभी अनुभव नहीं किया है। इसलिए जो लोग यह प्रयोग करना चाहें, वे सोच-समझकर करें। एक-दो बार आजमा कर देखनेमें कोई नुकसान होनेकी संभावना नहीं है।

आरोग्यकी कुंजी, पृ० ४०–४३; १९५८

२. पानी

पानीका उपचार प्रसिद्ध और पुरानी चीज है। उसके बारेमें अनेक पुस्तकें लिखी गयी हैं। पर कूनेने पानीका सरल और उत्तम उपयोग ढूंढ़ निकाला है। कूनेकी पुस्तक हिन्दुस्तानमें बहुत प्रसिद्ध हुई और उसका अनुवाद भी हमारी अनेक भाषाओंमें हुआ है। कूनेके

सबसे अधिक अनुयायी आन्ध्र प्रदेशमें मिलते हैं। कूनेने खुराकके बारेमें भी काफी लिखा है। मगर यहां तो मेरा विचार उसके केवल पानीके उपचारोंके बारेमें ही लिखनेका है।

कूनेके उपचारोंमें मध्यबिंदु कटि-स्नान और घर्षण-स्नान है। उनके लिए उसने विशेष बरतन (टब) की भी योजना की है। मगर उसकी कोई खास आवश्यकता नहीं है। मनुष्यके कदके अनुसार तीससे छत्तीस इंच लंबा कोई भी टब ठीक काम देता है। अनुभवसे ज्यादा बड़े टबकी आवश्यकता मालूम हो, तो ज्यादा बड़ा ले सकते हैं। उसमें ठंडा पानी भरना चाहिये। गर्मीकी ऋतुमें पानीको ठंडा रखनेकी खास आवश्यकता है। पानीको तुरन्त ठंडा करनेके लिए यदि मिल सके तो थोड़ी बरफ उसमें डाल सकते हैं। समय हो तो मिट्टीके घड़ेमें ठंडा किया हुआ पानी अच्छी तरह काम दे सकता है। टबमें पानीके ऊपर एक कपड़ा ढंक कर जल्दी-जल्दी पंखा करनेसे भी पानी तुरन्त ठंडा किया जा सकता है।

टबको स्नानघरकी दीवारके साथ लगाकर रखना चाहिये और उसमें पीठको सहारा देनेके लिए एक लम्बा लकड़ीका तख्ता रखना चाहिये, ताकि उसका सहारा लेकर रोगी आरामसे बैठ सके। रोगीको अपने पैर पानीसे बाहर रखकर बैठना चाहिये। पानीसे बाहरका शरीरका भाग अच्छी तरह ढंका हुआ रहना चाहिये, ताकि रोगीको सर्दी न लगे। जिस कमरेमें टब रखा जाय वह हवादार और प्रकाशवाला होना चाहिये। रोगीको आरामसे टबमें बैठाकर उसके पेड़ू पर नरम तौलियेसे धीरे-धीरे घर्षण करना चाहिये। पांच मिनिटसे लेकर तीस मिनिट तक टबमें बैठा जा सकता है। स्नानके बाद शरीरके गीले हिस्सेको सुखाकर रोगीको बिस्तरमें सुला देना चाहिये।

यह स्नान बहुत सख्त बुखारको भी उतार देता है। इस तरह स्नान लेनेमें नुकसान तो कुछ होता ही नहीं, जब कि लाभ प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। यह स्नान भूखे पेट ही लेना चाहिये। इससे कब्जियतको भी फायदा होता है और अजीर्ण भी मिटता है। यह स्नान लेनेवालेके

शरीरमें स्फूर्ति और ताजगी आती है। कब्जियतवालोंको कूनेने स्नानके बाद तुरन्त आधा घंटा तेजीसे टहलनेकी सलाह दी है।

इस स्नानका मैंने बहुत उपयोग किया है। मैं यह नहीं कह सकता कि वह हमेशा ही सफल रहा है, मगर इतना कह सकता हूं कि सौमें पचहत्तर बार वह सफल सिद्ध हुआ है। खूब बुखार चढ़ा हुआ हो, तब यदि रोगीकी स्थिति ऐसी ही कि उसे टबमें बैठाया जा सके, तो टबमें बैठानेसे उसका दो-तीन डिग्री तक बुखार अवश्य उतर जायगा और सन्निपातका भय मिट जायगा।

इस स्नानके बारेमें कूनेकी दलील यह है: बुखारके बाहरी चिह्न भले कुछ भी हों, मगर उसका आन्तरिक कारण हर मामलेमें एक ही होता है। अंतड़ियोंमें इकट्ठे हुए मलके जहरसे या अन्य कारणोंसे बुखार उत्पन्न होता है। यह अंतड़ियोंका बुखार — अन्दरकी गर्मी — अनेक रूप लेकर बाहर प्रकट होता है। यह आंतरिक बुखार कटि-स्नानसे अवश्य ही उतरता है, और उससे बाहरके अनेक उपद्रव अपने-आप शान्त हो जाते हैं। मैं नहीं जानता कि इस दलीलमें कितना तथ्य है।

परन्तु सामान्य मनुष्यको इतना समझ लेना चाहिये कि नैसर्गिक उपचारोंका जैसा नाम है वैसा ही उनका गुण भी है। क्योंकि वे कुदरती हैं, इसलिए सामान्य मनुष्य भी निश्चित होकर उनका उपयोग कर सकता है। सिरमें दर्द हो तो रूमालको ठंडे पानीमें भिगोकर सिर पर रखनेसे कोई हानि हो ही नहीं सकती। गीले रूमालकी जगह गीली मिट्टीकी पट्टी रखें, तो जल और मिट्टी दोनोंके गुणोंका लाभ मिलेगा।

अब मैं घर्षण-स्नान पर आता हूं। जननेन्द्रिय शरीरकी बहुत नाजुक इन्द्रिय है। उसकी ऊपरकी चमड़ीके सिरेमें कोई अद्‌भुत वस्तु रहती है। उसका वर्णन करना मुझे नहीं आता। इस ज्ञानका लाभ उठाकर कूनेने कहा है कि इस इन्द्रियके सिरे पर (पुरुष हो तो सुपारी पर चमड़ी चढ़ाकर) नरम रूमालको पानीमें भिगोकर घिसते जाना चाहिये और पानी डालते जाना चाहिये। उपचारकी पद्धति यह बताई

गई है: पानीके टबमें एक स्टूल रखा जाय। स्टूलकी बैठक पानीकी सतहसे थोड़ी ऊंची होनी चाहिये। रोगीको इस स्टूल पर पांव टबसे बाहर रखकर बैठ जाना चाहिये और जननेन्द्रियके सिरे पर घर्षण करना चाहिये। उससे इन्द्रियको तनिक भी तकलीफ नहीं पहुंचनी चाहिये। यह क्रिया बीमारको अच्छी और आनन्ददायी लगनी चाहिये। स्नान लेनेवालेको इस घर्षणसे बहुत शान्ति मिलती है। उसका रोग भले कुछ भी हो, परन्तु उस समय तो वह शान्त हो ही जाता है। कूनेने इस घर्षण-स्नानको कटि-स्नानसे ऊंचा स्थान दिया है। मुझे जितना अनुभव कटि-स्नानका है, उतना घर्षण-स्नानका नहीं है। इसमें मुख्य दोष तो मैं अपना ही मानता हूं। मैंने घर्षण-स्नानका प्रयोग करनेमें आलस्य किया है। जिन लोगोंको यह उपचार करनेकी मैंने सूचना की थी, उन्होंने इसका धीरजके साथ प्रयोग नहीं किया। इसलिए इस स्नानके परिणामके बारेमें मैं निजी अनुभवसे कुछ नहीं लिख सकता। सबको इसे स्वयं ही आजमा कर देख लेना चाहिये। टब वगैरा न मिल सके तो लोटेमें पानी भरकर भी घर्षण-स्नान किया जा सकता है। उससे रोगीको शान्ति और आराम तो अवश्य मिलेगा।

इन दोनों खास स्नानोंको हम कूने-स्नान कह सकते हैं। तीसरा ऐसा ही असर पैदा करनेवाला चद्दर-स्नान है। जिसे बुखार आता हो या किसी तरह भी नींद न आती हो, उसके लिए यह स्नान बहुत उपयोगी है।

इस स्नानकी पद्धति यह है: खाट पर दो-तीन गरम कम्बल बिछाने चाहिये। ये काफी चौड़े होने चाहिये। इनके ऊपर एक मोटी सूती चद्दर—मोटी खादीका खेस—बिछाना चाहिये। इस चद्दरको ठंडे पानीमें भिगोकर और खूब निचोड़कर कम्बलों पर बिछाना चाहिये। इसके ऊपर रोगीको कपड़े उतारकर चित सुला देना चाहिये। उसका सिर कम्बलोंके बाहर तकिये पर रखना चाहिये और सिर पर गीला निचोड़ा हुआ तौलिया रखना चाहिये। रोगीको सुलाकर तुरन्त कम्बलके किनारे और चद्दर चारों तरफसे शरीर पर लपेट देने चाहिये। उसके हाथ कम्बलोंके अन्दर होने चाहिये और पैर भी

अच्छी तरह चद्दर और कम्बलोंसे ढंके रहने चाहिये, ताकि बाहरकी हवा भीतर न जा सके। इस स्थितिमें रोगीको एक-दो मिनटमें ही गरमी लगनी चाहिये। सुलाते समय सर्दीका क्षणिक आभास मात्र होगा, बादमें तो रोगीको अच्छा ही लगेगा। बुखारने अगर घर कर लिया हो, तो पांचेक मिनटमें गर्मी मालूम होकर पसीना छूटने लगेगा। परन्तु सख्त बीमारीमें मैंने आध घंटे तक रोगीको इस तरह गीली चद्दरमें लपेटकर रखा है; और अन्तमें उसे पसीना आया है। कभी-कभी पसीना नहीं छूटता, मगर रोगी सो जाता है। सो जाये तो रोगीको जगाना नहीं चाहिये। नींदका आना इस बातका सूचक है कि उसे चद्दर-स्नानसे आराम मिला है। चद्दरमें रखनेके बाद रोगीका बुखार एक-दो डिग्री तो नीचे उतरता ही है।

शरीरमें घमोरी निकली हो, पित्ती (prickly heat) निकली हो, आमवात (urticaria) निकला हो, बहुत खुजली आती हो, खसरा या चेचक निकली हो, तो भी यह चद्दर-स्नान काम देता है। मैंने इन रोगोंमें चद्दर-स्नानका उपयोग खूब किया है। चेचक या खसरेमें गुलाबी रंग आ जाय इतना परमेंगनेट मैं पानीमें डालता था। चद्दरका उपयोग हो जाने पर उसे उबलते हुए पानीमें डाल देना चाहिये और जब पानी कुनकुना हो जाय तब उसे अच्छी तरह धोकर सुखा लेना चाहिये।

रक्तकी गति मन्द पड़ गई हो, पांव टूटते हों, तब बरफ घिसनेसे बहुत फायदा होते मैंने देखा है। बरफके उपचारका असर गर्मीकी ऋतुमें अधिक अच्छा होता है। सर्दीकी ऋतुमें कमजोर मनुष्य पर बरफका उपचार करनेमें खतरा है।

अब हम गरम पानीके उपचारोंके बारेमें थोड़ा विचार करें। गरम पानीका समझपूर्वक उपयोग करनेसे अनेक रोग शान्त हो जाते हैं। जो काम प्रसिद्ध दवा आयोडीन करती है, वही काम काफी हद तक गरम पानी कर देता है। सूजनवाले भाग पर हम आयोडीन लगाते हैं। उस पर गरम पानीकी पट्टी रखनेसे आराम हो सकता है। कानके

दर्दमें हम आयोडीनको बूंदें डालते हैं; उसमें भी गरम पानीकी पिचकारी लगानेसे दर्द शांत होनेकी संभावना रहती है। आयोडीनके उपयोगमें कुछ खतरा रहता है, जब कि गरम पानीके उपचारमें कुछ भी नहीं। जिस तरह आयोडीन जन्तुनाशक है, उसी तरह उबलता हुआ गरम पानी भी जन्तुनाशक है। इसका यह अर्थ नहीं कि आयोडीन बहुत उपयोगी वस्तु नहीं है। उसकी उपयोगिताके बारेमें मेरे मनमें तनिक भी शंका नहीं है। मगर गरीबके घरमें आयोडीन नहीं होता। वह महंगी चीज है। आयोडीन हर आदमीके हाथमें नहीं रखा जा सकता। मगर पानी तो हर जगह होता है, इसलिए हम दवाके तौर पर उसके उपयोगकी अवगणना करते हैं। ऐसी अवगणनासे हमें बचना चाहिये। ऐसे घरेलू उपचारोंको सीखकर और उनका उपयोग करके हम अनेक भयोंसे बच जाते हैं।

बिच्छूके डंकके शिकारको जब दूसरी किसी चीजसे फायदा नहीं होता, तब डंकवाले भागको गरम पानीमें रखनेसे कुछ आराम तो मिलता ही है।

एकाएक सर्दी लगे, कंपकंपी चढ़ने लगे, तब रोगीको भाप देनेसे या उसे अच्छी तरह कम्बल ओढ़ाकर उसके चारों ओर गरम पानीकी बोतलें रखनेसे उसकी कंपकंपी मिटायी जा सकती है। सबके पास रबड़की गरम पानीकी थैली नहीं होती। लेकिन कांचकी मजबूत बोतलमें मजबूत कॉर्क लगाकर उसे गरम पानीकी थैलीके तौर पर इस्तेमाल किया जा सकता है। धातुकी या दूसरी बोतल बहुत गरम हो, तो उसे कपड़ेमें लपेटकर इस्तेमाल करना चाहिये।

भापके रूपमें पानी बहुत काम देता है। रोगीको पसीना न आता हो तो भापके द्वारा पसीना लाया जा सकता है। गठियासे जिनका शरीर निकम्मा बन गया हो, या जिनका वजन बहुत बढ़ गया हो, उनके लिए भाप-स्नान बहुत उपयोगी वस्तु है।

भापका स्नान लेनेका पुराना और आसानसे आसान तरीका यह है: सनकी या सुतलीकी खाट इस्तेमाल करना ज्यादा अच्छा है,

मगर निवारकी खाट भी काम दे सकती है। खाट पर एक खेस या कम्बल बिछाकर रोगीको उस पर सुला देना चाहिये। उबलते हुए पानीके दो पतीले या हंडे खाटके नीचे रखकर रोगीको इस तरह ढंक देना चाहिये कि कम्बल खाट परसे लटक कर चारों तरफ जमीनको छू ले, ताकि खाटके नीचे बाहरकी हवा बिलकुल न जा सके। इस तरहसे लपेटनेके बाद पानीके पतीलों या हंडों परसे ढंकना उतार देना चाहिये। इससे रोगीको भाप मिलने लगेगी। अगर अच्छी तरह भाप न मिले तो पानीको बदलना होगा। दूसरे हंडेमें पानी उबलता हो, तो उसे खाटके नीचे रख देना चाहिये। साधारणतया हम लोगोंमें यह रिवाज है कि खाटके नीचे हम अंगीठी रखते हैं और उसके ऊपर उबलते हुए पानीका बरतन। इस तरह पानीकी गर्मी कुछ ज्यादा मिल सकती है, मगर उसमें दुर्घटनाका डर रहता है। एक चिनगारी भी उड़े और कम्बल या किसी दूसरी चीजको आग लग जाय, तो रोगीकी जान खतरेमें पड़ सकती है। इसलिए तुरन्त गर्मी पानेका लोभ छोड़कर जो तरीका मैंने ऊपर बताया है, उसीका उपयोग करना अच्छा है।

कुछ लोग भापके पानीमें वनस्पतियां डालते हैं, जैसे कि नीमके पत्ते। मुझे स्वयं इसकी उपयोगिताका अनुभव नहीं है, मगर भापका उपयोग तो प्रत्यक्ष है। यह हुआ पसीना लानेका तरीका।

पांव ठंडे हो गये हों या टूटते हों, तो एक गहरे बरतनमें, जिसमें कि घुटने तक पांव पहुंच सकें, सहन होने लायक गरम पानी भरना चाहिये और उसमें राईकी भुक्की डालकर कुछ मिनट तक पांव रखने चाहियें। इससे पांव गरम हो जाते हैं, बेचैनी दूर हो जाती है, पांवोंका टूटना बन्द हो जाता है, खून नीचे उतरने लगता है और रोगीको आराम मालूम होता है। बलगम हो या गला दुखता हो, तो केटलीमें उबलता हुआ पानी भरकर गले और नाकको भाप दी जा सकती है। केटलीको एक स्वतंत्र नली लगाकर उसके द्वारा आरामसे भाप ली जा सकती है। यह नली लकड़ीकी होनी चाहिये। इस

नली पर रबड़की नली लगा लेनेसे काम और भी आसान हो जाता है।

आरोग्यकी कुंजी, पृ० ४३–५२; १९५८

३. आकाश

आकाशका ज्ञानपूर्वक उपयोग हम कमसे कम करते हैं। उसका ज्ञान भी हमें कमसे कम होता है। आकाशको अवकाश कहा जा सकता है। दिनमें अगर बादल न हों, तो ऊपरकी ओर देखने पर एक अत्यन्त स्वच्छ सुन्दर आसमानी रंगका शामियाना नजर आता है। उसको हम आकाश कहते हैं। उसीका दूसरा नाम आसमान है। इस शामियानेका कोई ओर-छोर देखनेमें नहीं आता। वह जितना दूर है उतना ही हमारे नजदीक भी है। हमारे चारों ओर आकाश न हो, तो हमारा खातमा ही हो जाय। जहां कुछ भी नहीं है वहां आकाश है। इसलिए यह नहीं समझना चाहिये कि दूर-दूर जो आसमानी रंग देखनेमें आता है वही आकाश है। आकाश तो हमारे पाससे ही शुरू हो जाता है। इतना ही नहीं, वह हमारे भीतर भी है। खालीपन अथवा शून्य (vaccum)को हम आकाश कह सकते हैं। मगर सच तो यह है कि जो खाली नजर आता है, वह हवासे भरा हुआ रहता है। यह भी सच है कि हम हवाको देख नहीं सकते। मगर हवाके रहनेका ठिकाना कहां है? हवा आकाशमें ही विहार करती है न? इसलिए आकाशसे हम अलग हो ही नहीं सकते। हवाको तो बहुत हद तक पम्प द्वारा खींचा जा सकता है, मगर आकाशको कौन खींच सकता है? यह सही है कि हम आकाशको भर देते हैं। मगर क्योंकि आकाश अनन्त है, इसलिए कितने भी शरीर क्यों न हों, सब उसमें समा जाते हैं।

इस आकाशकी मदद हमें आरोग्यकी रक्षाके लिए और अगर आरोग्य खो चुके हों, तो फिरसे आरोग्य प्राप्त करनेके लिए लेनी चाहिये। जीवनके लिए हवाकी सबसे अधिक आवश्यकता है, इसलिए हवा

सर्वव्यापक है। हवा दूसरी चीजोंके मुकाबलेमें तो व्यापक है, परन्तु वह अनन्त नहीं है। भौतिकशास्त्र हमें सिखाता है कि पृथ्वीसे अमुक मील ऊपर हम चले जायें, तो वहां हवा नहीं मिलती। ऐसा कहा जाता कि इस पृथ्वीके प्राणियों जैसे प्राणी हवाके आवरणसे बाहर जी नहीं सकते। यह बात सच हो या न हो, हमें तो इतना ही समझना है कि आकाश जैसे यहां है, वैसे ही हवाके आवरणके बाहर भी है। इसलिए सर्वव्यापक तो आकाश ही है। फिर भले वैज्ञानिक लोग सिद्ध किया करें कि उस आवरणके ऊपर 'ईथर' नामका पदार्थ है या कुछ और है। वह पदार्थ भी जिसके भीतर रहता है वह आकाश ही है। दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि अगर हम ईश्वरका भेद जान सकें, तो आकाशका भेद भी जान सकेंगे।

ऐसे महान तत्त्वका अभ्यास और उपयोग जितना हम करेंगे उतना ही अधिक आरोग्यका उपयोग हम कर सकेंगे।

पहला पाठ तो यह है इस सुदूर और अदूर तत्त्वके तथा हमारे बीचमें कोई आवरण नहीं आने देना चाहिये। अर्थात् यदि घरबारके बिना या कपड़ोंके बिना हम इस अनन्तके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ सकें, तो हमारा शरीर, बुद्धि और आत्मा पूरी तरह आरोग्यका अनुभव कर सकेंगे। इस आदर्श तक हम भले न पहुंच सकें, या करोड़ोंमें से कोई एक ही पहुंच सके, तो भी इस आदर्शको जानना, समझना और उसके प्रति आदरभाव रखना आवश्यक है। और यदि वह हमारा आदर्श हो, तो जिस हद तक हम उसे प्राप्त कर सकेंगे, उसी हद तक हम सुख, शान्ति और सन्तोषका अनुभव करेंगे।

इस विचार-श्रेणीके अनुसार घरबार, वस्त्रादिके उपयोगमें हम काफी अवकाश रख सकते हैं। कई घरोंमें इतना साज-सामान देखनेमें आता है कि मेरे जैसे गरीब आदमीका तो उसमें दम ही घुटने लगता है। उन सब चीजोंका उपयोग क्या है, यह उसकी समझमें ही नहीं आता। उसे वे सब धूल और जन्तुओंको इकट्ठा करनेके साधन ही मालूम होंगे।

आकाशके साथ मेल साधनेके लिए मैंने अपने जीवनमें अनेक झंझटें कम कर डाली हैं। घरकी सादगी, वस्त्रकी सादगी और रहन-सहनकी सादगी बढ़ाकर, एक शब्दमें कहूं और हमारे विषयसे सम्बन्ध रखनेवाली भाषामें कहूं, तो मैंने अपने जीवनमें उत्तरोत्तर खालीपन बढ़ाकर आकाशके साथ सीधा सम्बन्ध बढ़ाया है। यह भी कह सकता हूं कि जैसे-जैसे यह सम्बन्ध बढ़ता गया, वैसे-वैसे मेरा आरोग्य बढ़ता गया, मेरी शान्ति बढ़ती गयी, मेरा सन्तोष बढ़ता गया और धनेच्छा बिलकुल मन्द पड़ती गयी। जिसने आकाशके साथ सम्बन्ध जोड़ा है, उसके पास कुछ भी नहीं है और सब-कुछ है। अन्तमें मनुष्य उतनेका ही मालिक है, जितनेका वह प्रतिदिन उपयोग कर सकता है और जिसे वह पचा सकता है। इसलिए उसके उपयोगसे वह आगे बढ़ता है। सब ऐसा करें तो इस आकाश-व्यापी जगतमें सबके लिए स्थान रहे और किसीको तंगीका अनुभव ही न हो।

इसलिए मनुष्यके सोनेका स्थान आकाशके नीचे होना चाहिये। ओस और सर्दीसे बचनेके लिए काफी ओढ़नेको रखा जा सकता है। वर्षाऋतुमें एक छातेकी-सी छत भले हो, मगर दूसरी ऋतुओंमें हर समय उसकी छत अगणित तारागणोंसे जड़ित आकाश ही होगा। जब भी उसकी आंख खुलेगी, वह प्रतिक्षण नया-नया दृश्य देखेगा, इस दृश्यसे वह कभी ऊबेगा नहीं। इससे उसकी आंखें चौंधियायेंगी नहीं, बल्कि वे शीतलताका अनुभव करेंगी। तारागणोंका भव्य संघ उसे सदा घूमता ही दिखाई देगा। जो मनुष्य उनके साथ सम्पर्क साधकर सोयेगा, उन्हें अपने हृदयका साक्षी बनायेगा, वह अपवित्र विचारोंको कभी अपने हृदयमें स्थान नहीं देगा और शान्त निद्राका उपभोग करेगा।

परन्तु जिस तरह हमारे आसपास आकाश है, उसी तरह हमारे भीतर भी आकाश है। हमारी चमड़ीके एक-एक छिद्रमें, दो छिद्रोंके बीचकी जगहमें भी आकाश है। इस आकाश—अवकाशको भरनेका हम जरा भी प्रयत्न न करें। इसलिए हम आहार जितना आवश्यक हो उतना ही लें, तो हमारे शरीरमें अवकाश रहेगा। हमें इस बातका

हमेशा भान नहीं रहता कि हम कब अधिक या अयोग्य आहार कर लेते हैं। इसलिए अगर हम हफ्तेमें एक दिन या पखवारेमें एक दिन या अपनी सुविधासे उपवास करें, तो शरीरका सन्तुलन कायम रख सकते हैं। जो पूरे दिनका उपवास न कर सकें, वे एक या एकसे अधिक समयका खाना छोड़नेसे भी लाभ उठायेंगे।

आरोग्यकी कुंजी, पृ० ५२–५६; १९५८

४. तेज

जैसे आकाश, हवा, पानी आदि तत्त्वोंके बिना मनुष्यका निर्वाह नहीं हो सकता, वैसे ही तेज अर्थात् प्रकाशके बिना भी उसका निर्वाह नहीं हो सकता। प्रकाशमात्र सूर्यसे मिलता है। सूर्य न हो तो न हमें गरमी मिल सके, न प्रकाश। इस प्रकाशका हम पूरा उपयोग नहीं करते, इसलिए पूर्ण आरोग्यका भी अनुभव नहीं करते। जैसे हम पानीका स्नान करके साफ-स्वच्छ होते हैं, वैसे ही सूर्य-स्नान करके भी साफ और तन्दुरुस्त हो सकते हैं। दुर्बल मनुष्य या जिसका खून सूख गया हो, वह यदि प्रातःकालके सूर्यकी किरणें नंगे शरीर पर ले, तो उसके चेहरेका फीकापन और दुर्बलता दूर हो जायगी और यदि पाचन-क्रिया मंद हो गई हो तो वह जाग्रत हो जायेगी। सबेरे जब धूप ज्यादा न चढ़ी हो, उस समय यह स्नान करना चाहिये। जिसे नंगे शरीरसे लेटने या बैठनेमें सर्दी लगे, वह आवश्यक कपड़े ओढ़कर लेटे या बैठे और जैसे-जैसे शरीर सहन करता जाय, वैसे-वैसे शरीर परसे कपड़े हटाता जाय। नंगे बदन हम धूपमें टहल भी सकते हैं। कोई देख न सके ऐसी जगह ढूंढ़कर यह क्रिया की जा सकती है। अगर ऐसी सहूलियत पैदा करनेके लिए दूर जाना पड़े और इतना समय न हो, तो बारीक लंगोटीसे गुह्य भागोंको ढंककर सूर्य-स्नान लिया जा सकता है।

इस प्रकार सूर्य-स्नान लेनेसे बहुत लोगोंको लाभ हुआ है। क्षयरोगमें इसका खूब उपयोग होता है। सूर्य-स्नान अब केवल नैसर्गिक

उपचारोंका विषय नहीं रहा है। डॉक्टरोंकी देखरेखके नीचे ऐसे मकान बनाये गये हैं, जहां ठंडी हवामें कांचकी ओटमें सूर्य-किरणोंका सेवन किया जा सकता है।

कई बार फोड़ेका घाव भरता ही नहीं है। उसे सूर्य-स्नान दिया जाय तो वह भर जाता है। पसीना लानेके लिए मैंने रोगियोंको ग्यारह बजेकी जलती धूपमें सुलाया है। इससे रोगी पसीनेसे तरबतर हो जाता है। इतनी तेज धूपमें सुलानेके लिए रोगीके सिर पर मिट्टीकी पट्टी रखनी चाहिये। उस पर केलेके या दूसरे बड़े पत्ते रखने चाहिये, जिससे सिर ठंडा और सुरक्षित रहे। सिर पर तेज धूप कभी नहीं लेनी चाहिये।

आरोग्यकी कुंजी, पृ० ५७–५८; १९५८

५. वायु

जैसे पहले चार तत्त्व अत्यन्त उपयोगी हैं, वैसे ही यह पांचवां तत्त्व भी अत्यन्त उपयोगी है। जिन पांच तत्त्वोंका यह मनुष्य-शरीर बना है, उनके बिना मनुष्य टिक ही नहीं सकता। इसलिए वायुसे किसीको डरना नहीं चाहिये। आम तौर पर हम जहां कहीं जाते हैं वहां घरमें वायु और प्रकाशका प्रवेश बन्द करके आरोग्यको खतरेमें डाल देते हैं। सच तो यह है कि यदि हम बचपनसे ही हवाका डर न रखना सीखे हों, तो शरीरको हवा सहन करनेकी आदत हो जाती है और जुकाम, बलगम इत्यादिसे हम बच जाते हैं।

आरोग्यकी कुंजी, पृ० ५८; १९५८

प्रश्न—ऐसा कहा गया है कि कुदरती इलाजका उपयोग हर बीमारीके लिए हो सकता है। अगर यह सच है तो क्या उससे मोतियाबिन्द, दूर या पासकी चीजका साफ दिखाई न देना और आंखकी दूसरी बीमारियां मिट सकती हैं? क्या उससे चश्मा छूट सकता है? क्या कुदरती इलाजसे हर्निया और टॉन्सिल जैसे रोग, जिनमें चीर-फाड़की जरूरत रहती है, मिट सकते हैं?

उत्तर — मैं जानता हूं कि कुदरती इलाज करनेवाले डॉक्टर यह सब करनेका दावा करते हैं। लेकिन मैं उन डॉक्टरोंके साथ अपनी गिनती नहीं करता। फिर भी कुदरती इलाजके लिए एक बात तो जरूर कही जा सकती है। जाने अनजाने कुदरतके कानूनोंको तोड़नेसे ही बीमारी पैदा होती है। इसलिए उसका इलाज भी यही हो सकता है कि बीमार फिरसे कुदरतके कानूनों पर अमल करना शुरू कर दे। जिस आदमीने कुदरतके कानूनको हदसे ज्यादा तोड़ा है, उसे तो कुदरतकी सजा भोगनी ही पड़ेगी। या फिर उससे बचनेके लिए अपनी जरूरतके अनुसार डॉक्टरों या सर्जनोंकी मदद लेनी होगी। उचित सजाको सोच-समझकर चुपचाप सह लेनेसे मनकी शक्ति बढ़ती है, मगर उसे टालनेकी कोशिश करनेसे मन कमजोर बनता है।

हरिजनसेवक, १५–९–'४६

३

कुदरती उपचारके प्रयोग

१. धर्म-संकट

मेरा दूसरा लड़का मणिलाल बहुत बीमार हो गया। उसे कालज्वरने जकड़ लिया। ज्वर उतरता ही न था। बेचैनी भी थी। फिर रातमें सन्निपातके लक्षण भी दिखायी पड़े। इस बीमारीके पहले बचपनमें उसे चेचक भी बहुत जोरकी निकल चुकी थी।

मैंने डॉक्टरकी सलाह ली। उन्होंने कहा, "इसके लिए दवा बहुत कम उपयोगी होगी। इसे तो अण्डे और मुर्गीका शोरवा देनेकी जरूरत है।"

मणिलालकी उमर केवल दस सालकी थी। उससे भला मैं क्या पूछता? अभिभावक होनेके नाते निर्णय तो मुझीको करना था। डॉक्टर एक बहुत भले पारसी थे। मैंने कहा, "डॉक्टर, हम सब अन्नाहारी हैं। मेरी इच्छा अपने लड़केको इन दोमें से एक भी चीज देनेकी नहीं होती। क्या दूसरा कोई उपाय आप नहीं बतायेंगे?"

मैं कूनेके उपचार जानता था। उनके प्रयोग भी मैंने किये थे। मैं यह भी जानता था कि बीमारीमें उपवासका बड़ा स्थान है। मैंने मणिलालको कूनेकी रीतिसे कटि-स्नान कराना शुरू किया। मैं उसे तीन मिनटसे ज्यादा टबमें नहीं रखता था। तीन दिन तक मैंने उसे केवल पानी मिलाये हुए संतरेके रस पर रखा।

लेकिन बुखार उतरता न था। रातमें वह अंट-संट बकता था। तापमान १०४ डिग्री तक जाता था। मैं घबराया। यदि बालकको खो बैठा तो दुनिया मुझे क्या कहेगी? बड़े भाई क्या कहेंगे? दूसरे डॉक्टरको क्यों न बुलाया जाय? किसी वैद्यको क्यों न बुलाया जाय? अपनी ज्ञानहीन बुद्धि लड़ानेका माता-पिताको क्या अधिकार है?

एक ओर ऐसे विचार मनमें आते थे; दूसरी ओर इस तरहके विचार भी आते थे:

'हे जीव! तू जो अपने लिए करता वही अपने लड़केके लिए भी करे, तो परमेश्वरको संतोष होगा। तुझे पानीके उपचार पर श्रद्धा है, दवा पर नहीं। डॉक्टर रोगीको प्राणदान नहीं देता। वह भी तो प्रयोग ही करता है। जीवनकी डोर तो एक ईश्वरके ही हाथमें है। ईश्वरका नाम लेकर, उस पर श्रद्धा रखकर, तू अपना मार्ग मत छोड़।'

मनमें इस तरहका मन्थन चल रहा था। रात पड़ी। मैं मणिलालको बगलमें लेकर सोया था। मैंने उसे भिगोकर निचोयी हुई चादरमें लपेटनेका निश्चय किया। मैं उठा। चादर ली। उसे ठण्डे पानीमें भिगोया। निचोया। फिर उसमें मणिलालको सिरसे पैर तक लपेट दिया। ऊपरसे दो कम्बल ओढ़ा दिये। और सिर पर गीला तौलिया रखा। बुखारसे उसका शरीर तवेकी तरह तप रहा था और बिलकुल सूख गया था। पसीना आता ही नहीं था।

मैं बहुत थक गया था। मणिलालको उसकी मांके जिम्मे करके मैं आधे घण्टेके लिए चौपाटी पर चला गया — थोड़ी हवा खाकर ताजा होने और शांति प्राप्त करनेके लिए। रातके करीब दस बजे होंगे। लोगोंका आना-जाना कम हो गया था। मुझे बहुत कम होश था। मैं विचार-सागरमें गोते लगा रहा था। बार-बार कह रहा था: हे ईश्वर! इस धर्म-संकटमें तू मेरी लाज रखना। 'राम-राम' की रटन तो मुंहमें थी ही। थोड़े चक्कर लगाकर धड़कती छातीसे वापस आया। घरमें पैर रखते ही मणिलालने मुझे पुकारा: "बापू, आप आ गये?"

"हां, भाई।"

"मुझे अब इसमें से निकालिये न? मैं जला जा रहा हूं।

"क्यों, क्या पसीना छूट रहा है?"

"मैं तो पूरा भीग गया हूं। अब मुझे निकालिये न, बापूजी!"

मैंने मणिलालका माथा देखा। माथे पर पसीनेकी बूंदें दिखायी दीं। बुखार कम हो रहा था। मैंने ईश्वरका आभार माना।

"मणिलाल, अब तुम्हारा बुखार चला जायगा। अभी थोड़ा और पसीना नहीं आने दोगे?"

"नहीं, बापूजी! अब तो मुझे इस भट्टीसे निकाल लीजिये। फिर दुबारा और लपेटना हो तो लपेट दीजियेगा।"

मुझे धीरज आ गया था, इसलिए उसे बातोंमें उलझाकर कुछ मिनट मैंने और निकाल दिये। उसके माथेसे पसीनेकी धारायें बह चलीं। मैंने चादर खोली, उसका शरीर पोंछा। और बाप-बेटे दोनों साथ सो गये। दोनोंने गहरी नींद ली।

सबेरे मणिलालका बुखार हलका हो गया था। दूध और पानी तथा फलोंके रस पर वह चालीस दिन तक रहा। अब मैं निर्भय हो चुका था। ज्वर हठीला तो था, पर वशमें आ गया था। आज मेरे सब लड़कोंमें मणिलालका शरीर सबसे अधिक बलवान है।

मणिलालका नीरोग होना रामकी देन है अथवा पानीके उपचारकी, अल्पाहारकी और सार-संभालकी — इसका निर्णय कौन कर सकता है? सब अपनी-अपनी श्रद्धाके अनुसार जैसा चाहें निर्णय करें। मैंने तो यह माना कि ईश्वरने मेरी लाज रखी और आज भी मैं यही मानता हूं।

आत्मकथा, पृ० २१३–१६; १९५७

२. मिट्टी और पानीके प्रयोग

जैसे-जैसे मेरे जीवनमें सादगी बढ़ती गयी, वैसे-वैसे रोगोंके लिए दवा लेनेकी मेरी अरुचि, जो पहलेसे ही थी, बढ़ती गयी। जब मैं डरबनमें वकालत करता था तब डॉ० प्राणजीवनदास मेहता मुझे अपने साथ ले जानेके लिए आये थे। उस समय मुझे कमजोरी रहती थी और कमी-कमी शरीरमें सूजन भी हो आती थी। उन्होंने इसका उपचार किया था और मुझे आराम हो गया था। इसके बाद देशमें वापस आने तक मुझे कोई उल्लेख करने जैसी बीमारी हुई हो इसकी याद नहीं है।

पर जोहानिस्बर्गमें मुझे कब्ज रहता था और कभी-कभी सिर भी दुखा करता था। कोई दस्तावर दवा लेकर मैं स्वास्थ्यको संभाले रहता था। खाने-पीनेमें पथ्यका ध्यान तो हमेशा रखता ही था, पर उससे मैं पूरी तरह रोगमुक्त नहीं हुआ। मनमें यह खयाल बना ही रहता था कि दस्तावर दवाओंसे भी छुटकारा मिल जाय तो अच्छा हो।

इन्हीं दिनों मैंने मैन्चेस्टरमें हुई 'नो ब्रेकफास्ट एसोसियेशन' की स्थापनाका समाचार पढ़ा। इसके पीछे दलील यह थी कि अंग्रेज बहुत बार और बहुत खाते हैं, रातमें बारह बजे तक खाते रहते हैं और फिर डॉक्टरोंके घर खोजते फिरते हैं। इस उपाधिसे छूटना हो तो उन्हें सबेरेका नाश्ता — 'ब्रेकफास्ट' — छोड़ देना चाहिये। मुझे लगा कि यद्यपि यह दलील मुझ पर पूरी तरह लागू नहीं होती, फिर भी कुछ अंशोंमें तो लागू होती ही है। मैं दिनमें तीन बार पेट भरकर खाता था और दोपहरको चाय भी पीता था। मैं कभी अल्पाहारी नहीं रहा। निरामिषाहारमें मसालोंके बिना जितने भी स्वाद लिये जा सकते थे वे सब स्वाद मैं लेता था। सबेरे छह-सात बजेसे पहले शायद ही कभी उठता था। अतएव मैंने सोचा कि यदि मैं भी सुबहका नाश्ता छोड़ दूं, तो सिरके दर्दसे अवश्य ही छुटकारा पा सकूंगा। मैंने सुबहका नाश्ता छोड़ दिया। कुछ दिनों तक यह अखरा तो सही, पर सिरका दर्द बिलकुल मिट गया। इससे मैंने यह नतीजा निकाला कि मेरा आहार आवश्यकतासे अधिक था।

पर इस परिवर्तनसे मेरी कब्जकी शिकायत दूर नहीं हुई। कूनेके कटि-स्नानका उपचार करनेसे थोड़ा आराम हुआ। पर अपेक्षित परिवर्तन तो नहीं ही हुआ। इस बीच उसी निरामिषाहार-गृह चलानेवाले जर्मनने या दूसरे किसी मित्रने मुझे जुस्टकी 'रिटर्न टु नेचर' (प्रकृतिकी ओर लौटो) नामक पुस्तक दी। उसमें मैंने मिट्टीके उपचारके बारेमें पढ़ा। सूखे और हरे फल ही मनुष्यका प्राकृतिक आहार हैं, इस बातका भी इस लेखकने बहुत समर्थन किया है। इस बार मैंने केवल फलाहारका प्रयोग तो शुरू नहीं किया, पर मिट्टीका उपचार तुरन्त शुरू कर दिया। मुझ पर उसका आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा। उपचार इस प्रकार था :

खेतकी साफ लाल या काली मिट्टी लेकर और उसमें आवश्यक मात्रामें पानी डालकर साफ पतले, गीले कपड़ेमें उसे लपेटा और पेट पर रखकर उस पर पट्टी बांध दी। यह पुलटिस रातको सोते समय मैं बांधता था और सबेरे अथवा रातमें जब जाग जाता तब उसे खोल दिया करता था। इससे मेरा कब्ज जाता रहा। उसके बाद मिट्टीके ये उपचार मैंने अपने पर और अपने अनेक साथियों पर किये और मुझे याद है कि वे शायद ही किसी पर निष्फल रहे हों।

देशमें आनेके बाद मैं ऐसे उपचारोंके विषयमें आत्म-विश्वास खो बैठा हूं। मुझे प्रयोग करनेका, एक जगह स्थिर होकर बैठनेका, अवसर भी नहीं मिल सका। फिर भी मिट्टी और पानीके उपचारोंके बारेमें मेरी श्रद्धा बहुत-कुछ वैसी ही है जैसी आरंभमें थी। आज भी मैं मर्यादाके अन्दर रहकर मिट्टीका उपचार स्वयं अपने ऊपर तो करता ही हूं और प्रसंग पड़ने पर अपने साथियोंको भी उसकी सलाह देता हूं। जीवनमें दो गंभीर बीमारियां मैं भोग चुका हूं, फिर भी मेरा यह विश्वास है कि मनुष्योंको दवा लेनेकी बहुत कम आवश्यकता रहती है। पथ्य तथा पानी, मिट्टी इत्यादिके घरेलू उपचारोंसे हजारमें से ९९९ रोगी स्वस्थ हो सकते हैं। क्षण-क्षणमें वैद्य, हकीम और डॉक्टरके घर दौड़नेसे और शरीरमें अनेक प्रकारके पाक और रसायन ठूंसनेसे मनुष्य न सिर्फ अपने जीवनको छोटा कर लेता है, बल्कि अपने मन पर काबू भी खो बैठता है। फलतः वह मनुष्यत्व गंवा देता है और शरीरका स्वामी रहनेके बदले उसका गुलाम बन जाता है।

मैं यह बात बीमारीके बिछौने पर पड़ा-पड़ा लिख रहा हूं, इस कारणसे कोई इन विचारोंकी अवगणना न करें। मैं अपनी बीमारीके कारण जानता हूं। मुझे इस बातका पूरा-पूरा ज्ञान और भान है कि अपने ही दोषोंके कारण मैं बीमार पड़ा हूं और इस भानके कारण ही मैंने धीरज नहीं छोड़ा है। इस बीमारीको मैंने ईश्वरका अनुग्रह माना है और अनेक दवाओंके सेवनके लालचसे मैं दूर रहा हूं। मैं यह भी जानता हूं कि अपने हठसे मैं डॉक्टर मित्रोंको परेशान कर देता हूं, पर वे उदार भावसे मेरे हठको सह लेते हैं और मेरा त्याग नहीं करते।

पर मुझे इस समयकी अपनी स्थितिके वर्णनको और नहीं बढ़ाना चाहिये। आगे बढ़नेसे पहले पाठकोंको थोड़ा सावधान करनेकी आवश्यकता है। यह लेख पढ़कर जो जुस्टकी पुस्तक खरीदें, वे उसकी हर बातको वेदवाक्य न समझें। सभी पुस्तकोंमें प्रायः लेखककी एकांगी दृष्टि रहती है। किन्तु प्रत्येक वस्तुको कमसे कम सात दृष्टियोंसे देखा जा सकता है और उस दृष्टिसे वह वस्तु सच होती है। परंतु सब दृष्टियां एक ही समय और एक ही अवसर पर कभी सच नहीं होतीं। साथ ही, कई पुस्तकोंमें बिक्रीका और प्रसिद्धिके लालचका दोष भी होता है। अतएव जो कोई उक्त पुस्तक पढ़ें वे उसे विवेकपूर्वक पढ़ें और कुछ प्रयोग करने हों तो किसी अनुभवीकी सलाह लेकर करें, अथवा धैर्यपूर्वक ऐसी वस्तुका थोड़ा अभ्यास करके प्रयोग आरंभ करें।

आत्मकथा, पृ० २३१–३३; १९५७

३. दूधकी आवश्यकता

खेड़ा जिलेमें (फौजमें) सिपाहियोंकी भरतीका काम करते-करते मैं भोजनमें अपनी भूलके कारण मृत्युशय्या पर पड़ गया। दूधके बिना जीनेके लिए मैंने बहुत हाथ-पैर मारे। जिन वैद्यों, डॉक्टरों और रसायनशास्त्रियोंको मैं जानता था, उनकी मदद मैंने मांगी। किसीने मूंगके पानीका, किसीने महुएके तेलका और किसीने बादामके दूधका सुझाव दिया। इन सब चीजोंके प्रयोग करते-करते मैंने शरीरको निचोड़ डाला, पर उससे मैं बिछौना छोड़कर उठ न सका।

गाय-भैंसका दूध तो मैं ले ही नहीं सकता था। यह मेरा व्रत था। व्रतका हेतु तो दूधमात्रका त्याग था। पर व्रत लेते समय मेरे सामने गोमाता और भैंस माता ही थी इस कारणसे तथा जीनेकी आशासे मैंने मनको जैसे-तैसे फुसला लिया। मैंने व्रतके अक्षरका पालन किया और बकरीका दूध लेनेका निश्चय किया। बकरी माताका दूध लेते समय भी मैंने यह अनुभव किया कि मेरे व्रतकी आत्माका हनन हुआ है।

आरोग्य-विषयक मेरी पुस्तकके सहारे प्रयोग करनेवाले सब भाई-बहनोंको मैं सावधान करना चाहता हूं। दूधका त्याग पूरी तरह लाभप्रद प्रतीत हो अथवा अनुभवी वैद्य-डॉक्टर उसे छोड़नेकी सलाह दें तभी वे उसको छोड़ें, सिर्फ मेरी पुस्तकके भरोसे वे दूधका त्याग न करें। यहांका मेरा अनुभव अब तक तो मुझे यही बतलाता है कि जिसकी जठराग्नि मंद हो गयी है और जिसने बिछौना पकड़ लिया है, उसके लिए दूध जैसी दूसरी हलकी और पोषक खुराक है ही नहीं।

आत्मकथा, पृ० २३४–३५; १९५७

४. हाथकी टूटी हड्डीका उपचार

जिस स्टीमरमें मेरी पत्नी और बच्चे दक्षिण अफ्रीका आये, उसमें मेरा तीसरा लड़का रामदास भी था। रास्तेमें वह स्टीमरके कप्तानसे खूब हिलमिल गया था और कप्तानके साथ खेलते-खेलते उसका हाथ टूट गया था। कप्तानने उसकी बहुत सार-संभाल की थी। डॉक्टरने हड्डी बैठा दी थी। जब वह जोहानिस्बर्ग पहुंचा तो उसका हाथ लकड़ीकी पट्टियोंके बीच बंधा हुआ और रूमालकी गलपट्टीमें लटका हुआ था। स्टीमरके डॉक्टरकी सलाह थी कि घावको किसी योग्य डॉक्टरसे दुरुस्त करा लिया जाय।

पर मेरा यह समय तो धड़ल्लेके साथ मिट्टीके प्रयोग करनेका था। मेरे जिन मुवक्किलोंको मेरी नीमहकीमी पर भरोसा था, उनसे भी मैं मिट्टी और पानीके प्रयोग कराता था। तब रामदासके लिए और क्या होता? रामदासकी उमर उस समय आठ सालकी थी। मैंने उससे पूछा, "तेरे घावकी मरहम-पट्टी मैं स्वयं करूं, तो तू घबरायेगा तो नहीं?"

रामदास हंसा और उसने मुझे प्रयोग करनेकी अनुमति दी। यद्यपि उस उमरमें उसे अपने भले-बुरेका पता नहीं चल सकता था, फिर भी डॉक्टर और नीमहकीमके भेदको तो वह अच्छी तरह जानता था। लेकिन उसे मेरे प्रयोगोंकी जानकारी थी और मुझ पर विश्वास था, इसलिए वह निर्भय रहा।

कांपते-कांपते मैंने उसकी पट्टी खोली। घावको साफ किया और साफ मिट्टीकी पुलटिस रखकर पट्टीको पहलेकी तरह फिरसे बांध दिया। इस प्रकार मैं खुद ही रोज उसका घाव धोता और उस पर मिट्टी बांधता था। कोई एक महीनेमें घाव बिलकुल भर गया। किसी दिन कोई विघ्न उत्पन्न न हुआ और घाव दिन-ब-दिन भरता गया। स्टीमरके डॉक्टरने कहलवाया था कि डॉक्टरी मरहम-पट्टीसे भी घावके भरनेमें इतना समय तो लग ही जायगा।

इस प्रकार इन घरेलू उपचारोंके प्रति मेरा विश्वास और इन पर अमल करनेकी मेरी हिम्मत बढ़ गयी। घाव, बुखार, अजीर्ण, पीलिया इत्यादि रोगोंके लिए मिट्टी, पानी और उपवासके प्रयोग मैंने छोटों-बड़ों और स्त्री-पुरुषों पर किये। उनमें अधिकतर सफल हुए। इतना होने पर भी जो हिम्मत मुझमें दक्षिण अफ्रीकामें थी वह यहां हिन्दुस्तानमें नहीं रही और अनुभवसे यह भी प्रतीति हुई कि इन प्रयोगोंमें खतरा जरूर है।

इन प्रयोगोंके वर्णनका हेतु मेरे प्रयोगोंकी सफलता सिद्ध करना नहीं है। एक भी प्रयोग पूरी तरह सफल हुआ है, ऐसा दावा नहीं किया जा सकता। डॉक्टर भी ऐसा दावा नहीं कर सकते। पर कहनेका आशय इतना ही है कि जिसे नये अपरिचित प्रयोग करने हों, उसे आरम्भ खुद अपनेसे करना चाहिये। ऐसा होने पर सत्य जल्दी प्रकट होता है और इस प्रकारके प्रयोग करनेवालेको ईश्वर उबार लेता है।

आत्मकथा, पृ० २६७-६८; १९५७

५. रक्तस्राव

डरबनमें रक्तस्रावके कारण जो शस्त्रक्रिया हुई उसके बाद कस्तूरबाईका रक्तस्राव थोड़े समयके लिए बन्द हो गया था। पर अब वह फिर शुरू हो गया था और किसी प्रकार बन्द ही न होता था। अकेले पानीके सारे उपचार व्यर्थ सिद्ध हुए। यद्यपि पत्नीको मेरे उपचारों पर विशेष श्रद्धा नहीं थी, तथापि उनके लिए उसके मनमें तिरस्कार भी नहीं था। दूसरी दवा करनेका उसका आग्रह न था।

मैंने उसे नमक और दाल छोड़नेके लिए मनाना शुरू किया। बहुत मनाने पर भी, अपने कथनके समर्थनमें कुछ न कुछ प्रमाणभूत बातें पढ़कर सुनाने पर भी, वह मानी नहीं। आखिर उसने कहा: "दाल और नमक छोड़नेको तो कोई आपसे कहे, तो आप भी नहीं छोड़ेंगे।" मुझे इससे दुःख हुआ और हर्ष भी हुआ। मुझे अपना प्रेम उंड़ेलनेका अवसर मिला। उसके हर्षमें मैंने तुरन्त ही कहा, "तुम्हारा यह खयाल गलत है। मुझे बीमारी हो और वैद्य इन चीजोंको या दूसरी किसी चीजको छोड़नेके लिए कहे, तो मैं अवश्य छोड़ दूं। लेकिन जाओ, मैंने तो एक सालके लिए दाल और नमक दोनों छोड़े। तुम छोड़ो या न छोड़ो, यह अलग बात है।"

पत्नीको बहुत पश्चात्ताप हुआ। वह कह उठी, "मुझे माफ कीजिये। आपका स्वभाव जानते हुए भी मैं कहते कह गयी। अब मैं दाल और नमक नहीं खाऊंगी, लेकिन आप अपनी बात लौटा लें। यह तो मेरे लिए बहुत बड़ी सजा हो जायेगी।"

मैंने कहा, "अगर तुम दाल और नमक छोड़ोगी, तो अच्छा ही होगा। मुझे विश्वास है कि उससे तुम्हें लाभ होगा। पर मैं की हुई प्रतिज्ञा वापस नहीं ले सकूंगा। मुझे तो इससे लाभ ही होगा। मनुष्य किसी भी निमित्तसे संयम क्यों न पाले, उससे उसे लाभ ही होता है। अतएव तुम मुझसे आग्रह न करो। फिर मेरे लिए भी यह एक परीक्षा हो जायेगी और इन दो पदार्थोंको छोड़नेका जो निश्चय तुमने किया है, उस पर दृढ़ रहनेमें तुम्हें मदद मिलेगी।" इसके बाद मुझे उसे मनानेकी जरूरत तो रही ही नहीं। "आप बहुत हठी हैं। किसीकी बात मानते ही नहीं।" कहकर और अंजलिभर आंसू बहाकर वह शांत हो गई।

इसके बाद कस्तूरबाईकी तबीयत खूब संभली। इसमें नमक और दालका त्याग कारणरूप था या वह किस हद तक कारणरूप था, अथवा उस त्यागसे उत्पन्न आहार-सम्बन्धी अन्य छोटे-बड़े परिवर्तन कारणभूत थे, या इसके बाद दूसरे नियमोंका पालन करानेमें मेरी पहरेदारी निमित्तरूप थी, अथवा उपर्युक्त प्रसंगसे उत्पन्न मानसिक उल्लास

निमित्तरूप था — यह मैं कह नहीं सकता। पर कस्तूरबाईका क्षीण शरीर फिर पनपने लगा, रक्तस्राव बन्द हुआ और 'वैद्यराज' के रूपमें मेरी साख कुछ बढ़ी।

आत्मकथा, पृ० २८५–८६; १९५७

६. पसलीका दर्द

लन्दनमें पसलीका मेरा दर्द मिट नहीं रहा था, इससे मैं घबराया। परन्तु मैं इतना जानता था कि औषधोपचारसे नहीं, बल्कि आहारके परिवर्तनसे और थोड़े बाहरी उपचारसे यह दर्द जाना ही चाहिये।

सन् १८९०में मैं डॉक्टर एलिन्सनसे मिला था। वे अन्नाहारी थे और आहारके परिवर्तन द्वारा बीमारियोंका इलाज करते थे। मैंने उन्हें बुलाया। वे आये। उन्हें मैंने अपना शरीर दिखाया और दूधके बारेमें अपनी आपत्तिकी बात उनसे कही। उन्होंने मुझे तुरन्त आश्वस्त किया और कहा: "दूधकी कोई आवश्यकता नहीं है। मुझे तो तुम्हें कुछ दिनों बिना किसी चिकनाईके ही रखना है।" यों कहकर पहले तो उन्होंने मुझे सिर्फ रूखी रोटी और कच्चे साग तथा फल खानेकी सलाह दी। कच्ची तरकारियोंमें मूली, प्याज और इसी तरहके दूसरे कंद तथा हरी तरकारियां और फलोंमें मुख्यत: नारंगी लेनेको कहा। इन तरकारियोंको कद्दूकश पर कसकर या चटनीकी शकलमें पीसकर खाना था। मैंने इस तरह तीन दिन तक काम चलाया। पर कच्चे साग मुझे बहुत माफिक नहीं आये। मेरा शरीर इस योग्य नहीं था कि इस प्रयोगकी मैं पूरी परीक्षा कर सकता और न वैसी श्रद्धा ही मुझमें थी। इसके अतिरिक्त, उन्होंने चौबीसों घंटे खिड़कियां खुली रखने, रोज कुनकुने पानीसे नहाने, दर्दवाले हिस्से पर तेलकी मालिश करने और पावसे लेकर आधे घंटे तक खुली हवामें घूमनेकी सलाह दी। यह सब मुझे अच्छा लगा। घरमें फ्रांसीसी ढंगकी खिड़कियां थीं। उन्हें पूरा खोल देने पर बरसातका पानी अन्दर आता था। ऊपरका रोशनदान खुलने लायक नहीं था। अतएव उसका पूरा शीशा तुड़वाकर उसमें से चौबीसों घंटे हवा आनेका

सुभीता कर लिया। फ्रांसीसी खिड़कियां मैं इतनी ही खुली रखता था, जिससे पानीकी बौछार अन्दर न आने पाये।

यह सब करनेसे मेरी तबीयत कुछ सुधरी। परन्तु बिलकुल अच्छी तो हुई ही नहीं।

डॉ० एलिन्सन जब दूसरी बार मुझे देखने आये, तो उन्होंने अधिक स्वतंत्रता दी और चिकनाईके लिए सूखे मेवेका अर्थात् मूंगफली आदिकी गिरीका मक्खन अथवा जैतूनका तेल मुझे लेनेको कहा। कच्चे साग अच्छे न लगें तो उन्हें पकाकर भातके साथ खानेको कहा। यह सुधार मुझे अधिक अनुकूल पड़ा। पर पीड़ा पूरी तरह नष्ट न हुई। सावधानीकी आवश्यकता तो थी ही। मैं खटिया न छोड़ सका।

इस तरह दिन बीत रहे थे कि इतनेमें एक दिन मि० रॉबर्ट्स आ पहुंचे और उन्होंने मुझसे देश जानेका आग्रह किया: "इस हालतमें आप नेटली कभी न जा सकेंगे। कड़ी सरदी तो अभी आगे पड़ेगी। मेरा आपसे विशेष आग्रह है कि अब आप देश चले जाइये और वहां स्वास्थ्यलाभ कीजिये। तब तक लड़ाई चलती रही, तो सहायता करनेके बहुतेरे अवसर आपको मिलेंगे ही। वर्ना आपने यहां जो कुछ किया है, उसे मैं कम नहीं मानता।"

मैंने यह सलाह मान ली और देश जानेकी तैयारी की।

डॉ० मेहताने मेरे शरीरको मीड्ज़ प्लास्टरकी पट्टीसे बांध दिया था और सलाह दी थी कि मैं यह पट्टी बंधी रहने दूं। दो दिन तक तो मैंने उसे सहन किया, लेकिन बादमें सहन न कर सका। अतएव थोड़ी मेहनतसे पट्टी उतार डाली और नहाने-धोनेकी आजादी हासिल की। खानेमें मुख्यतः सूखे और गीले मेवेको ही स्थान दिया। मेरी तबीयत दिन-प्रतिदिन सुधरती गयी और स्वेजकी खाड़ीमें पहुंचते-पहुंचते तो बहुत अच्छी हो गयी। शरीर दुर्बल था, फिर भी मेरा डर चला गया और मैं धीरे-धीरे रोज थोड़ी कसरत बढ़ाता गया। मैंने माना कि यह शुभ परिवर्तन केवल शुद्ध समशीतोष्ण हवाके कारण ही हुआ था।

आत्मकथा, पृ० ३१२–१५; १९५७

७. मृत्युशय्या पर

फौजमें रंगरूटोंकी भरतीके काममें मेरा शरीर काफी क्षीण हो गया। उन दिनों मेरे आहारमें मुख्यतः सिकी हुई और कुटी हुई मूंगफली, उसके साथ थोड़ा गुड़, केले वगैरा फल और दो-तीन नीबूका पानी — इतनी चीजें रहा करती थीं। मैं जानता था कि मूंगफली अधिक मात्रामें खानेसे नुकसान करती है। फिर भी वह अधिक खा ली गई। उसके कारण पेटमें मामूली पेचिश रहने लगी। मैं समय-समय पर साबरमती आश्रममें तो आता ही था। मुझे यह पेचिश बहुत ध्यान देने योग्य नहीं लगी। रात आश्रममें पहुंचा। उन दिनों मैं दवा क्वचित् ही लेता था। मेरा विश्वास यह था कि एक बारका खाना छोड़ देनेसे यह दर्द मिट जायेगा। दूसरे दिन सवेरे मैंने कुछ भी नहीं खाया था। इससे दर्द लगभग बंद हो चुका था। पर मैं जानता था कि मुझे उपवास चालू रखना चाहिये अथवा लेना ही हो तो फलके रस जैसी कोई चीज लेनी चाहिये।

उस दिन कोई त्योहार था। मुझे याद पड़ता है कि मैंने कस्तूरबाईसे कह दिया था कि मैं दोपहरको भी खाना नहीं खाऊंगा। लेकिन उसने मुझे ललचाया और मैं लालचमें फंस गया। उन दिनों मैं किसी भी पशुका दूध नहीं लेता था। इसलिए मैंने घी और छाछका भी त्याग कर दिया था। इस कारण उसने मुझसे कहा कि आपके लिए मैंने दले हुए गेहूंको तेलमें भूनकर लपसी बनायी है और खास तौर पर आपके लिए ही पूरे मूंग भी बनाये हैं। मैं स्वादके वश होकर पिघला। पिघलते हुए भी इच्छा तो यह रखी थी कि कस्तूरबाईको खुश रखनेके लिए थोड़ासा खा लूंगा, स्वाद भी ले लूंगा और शरीरकी रक्षा भी कर लूंगा। पर शैतान अपना निशाना ताककर ही बैठा था। खाने बैठा तो थोड़ा खानेके बदले मैं पेट भरकर खा गया। इस प्रकार स्वाद तो मैंने पूरा लिया, पर साथ ही यमराजको न्योता भी भेज दिया। खानेके बाद एक घंटा भी न बीता था कि जोरकी पेचिश शुरू हो गयी।

चिन्तातुर होकर साथियोंने मुझे चारों ओरसे घेर लिया। उन्होंने मुझे अपने प्रेमसे नहला दिया, पर वे बेचारे मेरे दुःखमें किस प्रकार हाथ बंटा सकते थे? मेरे हठका पार न था। मैंने डॉक्टरको बुलानेसे इनकार कर दिया। दवा तो मुझे लेनी ही नहीं थी। सोचा, किये हुए पापकी सजा भोगूंगा। साथियोंने यह सब मुंह लटका कर सहन किया। चौबीस घंटोंमें तीस-चालीस बार पाखानेकी हाजत हुई होगी। खाना तो मैं बन्द कर ही चुका था, और शुरूके दिनोंमें तो मैंने फलका रस भी नहीं लिया था। लेनेकी बिलकुल रुचि ही नहीं थी।

आज तक जिस शरीरको मैं पत्थरके समान मजबूत मानता था, वह अब गीली मिट्टी-जैसा बन गया। उसकी शक्ति क्षीण हो गयी। हाजतें तो जारी ही थीं। अतिशय परिश्रमके कारण मुझे बुखार आ गया और बेहोशी भी आ गयी। मित्र अधिक घबराये। दूसरे डॉक्टर भी आये। पर जो रोगी उनकी बात माने नहीं, उसके लिए वे क्या कर सकते थे?

उन दिनों मैं जलका उपचार करता था और उससे मेरा शरीर टिका हुआ था। पीड़ा शांत हो गयी थी, किन्तु शरीर किसी भी उपायसे पुष्ट नहीं हो रहा था। वैद्य मित्र और डॉक्टर मित्र अनेक प्रकारकी सलाह देते थे, पर मैं किसी तरह दवा पीनेको तैयार नहीं हुआ। एक रात तो मैंने बिलकुल आशा छोड़ दी थी। मुझे ऐसा भास हुआ कि अब मेरी मृत्यु समीप ही है।

यों मैं मौतकी राह देखता बैठा था कि इतनेमें डॉ० तलवलकर एक विचित्र प्राणीको लेकर आये। वे महाराष्ट्री हैं। हिन्दुस्तान उन्हें पहचानता नहीं। मैं उन्हें देखकर समझ सका था कि वे मेरी तरह 'चक्रम' हैं। वे अपने उपचारका प्रयोग मुझ पर करनेके लिए आये थे। वे बरफके उपचारके बड़े हिमायती हैं। मेरी बीमारीकी बात सुनकर जिस दिन वे मुझ पर बरफका अपना उपचार आजमानेके लिए आये, उसी दिनसे हम उन्हें 'आइस डॉक्टर' के उपनामसे पहचानते हैं। अपने विचारोंके विषयमें वे अत्यन्त आग्रही हैं। उनका विश्वास है कि उन्होंने डिग्रीधारी डॉक्टरोंसे भी कुछ अधिक अच्छी

खोजें की हैं। अपना यह विश्वास वे मुझमें पैदा नहीं कर सके। यह उनके और मेरे दोनोंके लिए दुःखकी बात रही है। मैं एक हद तक उनके उपचारोंमें विश्वास करता हूं। पर मेरा खयाल है कि कुछ अनुमानों तक पहुंचनेमें उन्होंने जल्दी की है।

पर उनकी खोजें योग्य हों अथवा अयोग्य, मैंने उन्हें अपने शरीर पर प्रयोग करने दिये। मुझे बाह्य उपचारोंसे स्वस्थ होना अच्छा लगता था, सो भी बरफके अर्थात् पानीके। अतएव उन्होंने मेरे सारे शरीर पर बरफ घिसनी शुरू की। इस इलाजसे जितने परिणामकी आशा वे लगाये हुए थे, उतना परिणाम तो मेरे संबंधमें नहीं निकला। फिर भी मैं, जो रोज मौतकी राह देखा करता था, अब मरनेके बदले कुछ जीनेकी आशा रखने लगा। मुझमें कुछ उत्साह पैदा हुआ। मनके उत्साहके साथ मैंने शरीरमें भी उत्साहका अनुभव किया। मैं कुछ अधिक खाने लगा। रोज पांच-दस मिनट घूमने लगा; और आसपासके कामोंमें थोड़ा-थोड़ा रस लेने लगा।

आत्मकथा, पृ० ३९०–९३; १९५७

४

कुदरती उपचार-गृह

पाठक जानते हैं कि डॉक्टर दीनशा मेहताके 'क्लिनिक' में मैं भाई जहांगीर पटेलके साथ एक ट्रस्टी बना हूं। उसमें शर्त यह है कि इस वर्षके जनवरीकी पहली तारीखसे वह संस्था धनिकोंकी मिटकर गरीबोंकी बन जानी चाहिये। मेरी आशा यह रहेगी कि अगर धनिक बीमार यहां आवें तो वे यथाशक्ति अधिकसे अधिक पैसे दें, फिर भी गरीबोंके साथ एक ही कमरेमें रहें। मुझे विश्वास है कि ऐसा करनेसे वे ज्यादा लाभ उठायेंगे। जो इस शर्तको मानकर नहीं रहना चाहें, उनको उपचार-गृहमें जानेकी आवश्यकता नहीं है। इस नियमका पालन आवश्यक है।

गरीबोंके इस आरोग्य-गृहमें उनकी तबीयत सुधारनेकी कोशिश करनेके अलावा उन्हें अच्छा स्वस्थ जीवन कैसे बिताना सो भी बताया जायेगा। आज तो आम तौर पर ऐसा माना जाता है कि कुदरती उपचारमें बहुत खर्च होता है; आयुर्वेदिक या डॉक्टरी उपचारका खर्च उससे कम होता है। अगर यह बात सही सिद्ध हो, तो मैं अपने प्रयत्नको व्यर्थ समझूंगा। लेकिन मेरा विश्वास इससे उलटा है और अनुभव भी जो कुछ है वह इससे उलटा ही है। नैसर्गिक चिकित्सकका कर्तव्य है कि वह रोगीके शरीरकी संभाल तो करे, मगर इतना ही करना काफी नहीं है। देहमें जो देही है, उसे वह पहचाने और उसके लिए भी उपचार बताये। वह उपचार तो रामनाम ही है। वह तो रामबाण दवा है। रामनामका क्या अर्थ है, सो मैं आज नहीं बता सकता। आज मैं इतना ही कहूंगा कि उसके बाद गरीबोंको दवाकी बहुत चिंता नहीं रहती। वे आज यों ही मरते हैं। अज्ञानवश वे जानते भी नहीं कि कुदरत क्या सिखाती है। अगर पूनामें यह प्रयोग

अच्छी तरहसे चला, तो कुदरती उपचारका एक विश्वविद्यालय कायम करनेका डॉक्टर दीनशा मेहताका स्वप्न सिद्ध हो सकेगा।

इस भगीरथ कार्यमें मैं भारतके सच्चे प्राकृतिक चिकित्सकोंकी सहायता चाहता हूं। इसमें पैसेका लालच तो हो ही नहीं सकता। जरूरत है सेवाभावसे गरीबोंका इलाज करनेकी। ऐसे प्राकृतिक चिकित्सक काफी संख्यामें मिलें तभी यह काम आगे बढ़ सकेगा।

हरिजनसेवक, १०–२–'४६

मैं मानता हूं कि हिन्दुस्तानके देहाती लोगोंकी बीमारियोंको कुदरती उपचारसे मिटानेकी चाबी मेरे हाथमें है। और इसलिए मुझे यह जानना चाहिये था कि पूना जैसे शहरमें गांववालोंकी बीमारियोंका कुदरती इलाज हो ही नहीं सकता। लेकिन ट्रस्ट तो बन गया। डॉ० मेहताके और मेरे साथ अत्यन्त व्यवहार-कुशल जहांगीरजी पटेल भी शामिल हुए। और डॉ० मेहताने जिस उपचार-गृहकी रचना धनवानोंके लिए की थी, उसका उपयोग गरीबोंके लिए करनेके खयालसे मैं दौड़ा दौड़ा पूना पहुंचा। मैंने कुछ बड़े-बड़े परिवर्तन सुझाये, लेकिन पिछले सोमवारको यानी ४ मार्चको अपने मौनमें मुझे यह ज्ञान हुआ कि एक शहरमें गरीब देहातियोंके लिए कुदरती उपचारका खयाल तक करने-वाला मूर्खोंका सरदार होना चाहिये। मैं समझ गया कि यदि गांवके बीमारोंका कुदरती उपचार करना है, तो मुझे उनके पास जाना चाहिये, न कि उनको मेरे पास आना चाहिये। जहां फांकनेको पुड़िया या पीनेको दवा दी जाती है, वहां भी वैद्यों और डॉक्टरोंको बीमारोंके घर जाना पड़ता है। और, जो बीमार डॉक्टरोंके पास जाते हैं, वे भी ज्यादातर डॉक्टरोंके अपने गांवमें या शहरमें ही रहनेवाले होते हैं।

कोई देहाती पूना जैसे शहरमें आये और उससे कहा जाय कि वह पेट या पीठ पर मिट्टीकी पट्टी रखे, नंगा होकर धूपमें सोये, कटि-स्नान या घर्षण-स्नान करे और अपना भोजन इस तरह पकाये कि उसका कोई हिस्सा व्यर्थ न जाये, तो यह निरी हिमाकत न होगी तो और क्या होगा? देहाती मरीज 'जी हां' कहकर लौट जायेगा,

लेकिन साथ ही मनमें हंसेगा और कुदरती उपचार करनेवालोंको बेवकूफ समझेगा। वह बेचारा मेरे पास एक पुड़िया फांकने या दवाकी प्याली पीकर लौटनेके खयालसे आता है और यह श्रद्धा रखता है कि इससे वह अच्छा हो जायेगा।

कुदरती उपचार इस तरह नहीं होते। उनमें तो जीवन जीनेका एक नया रास्ता सीखना पड़ता है। इन उपचारोंके सफल होनेके लिए यह जरूरी है कि उपचारक रोगीको झोंपड़ीके नजदीक रहे, रोगीको उपचारककी हमदर्दी और प्रेम मिले, उपचारकमें अखूट धीरज हो और उसे मानव-समाजका पूरा ज्ञान हो। जब उपचारक एक या एकसे ज्यादा गांवोंके लोगोंके मन चुरा सकता है, अपने नये रास्तेको पहचान सकता है और उस रास्ते चलने लग जाता है; और जब काफी पुरुष और स्त्रियां कुदरती उपचारके रहस्यको समझ लेते हैं, तभी ऐसे उपचारके विश्वविद्यालयकी नींव डाली जा सकती है।

इस सीधी-सी चीजको समझनेके लिए मुझे खास तौर पर ११ दिन नहीं लगने चाहिये थे। मुझको फौरन ही यह मालूम हो जाना चाहिये था कि ऐसे इलाजके लिए एक शहरी बंगलेकी जरूरत न होनी चाहिये। मैं नहीं जानता कि अपनी इस बेवकूफी पर मैं हंसूं या रोऊं। मैं तो हंसा ही हूं और किसी भी तरहका खर्च करनेसे पहले मैंने अपनी यह गलती सुधार ली है।

हरिजनसेवक, १७–३–'४६

काफी लोग कुदरती उपचारके लिए उरुलीकांचन आना चाहते हैं। देहातियोंके लिए मेरी कल्पनाके कुदरती उपचारका मतलब यह है कि ऐसा उपचार देहातमें जितने देहाती साधन मिल सकें उन्हींसे — बिजली और बरफकी मददके बिना — जितना किया जा सके उतना किया जाय। कुदरती उपचार यहीं तक मर्यादित है।

यह काम तो मेरे जैसेका ही हो सकता है, जो देहाती बन गया है और जिसका शरीर शहरोंमें रहते हुए भी हृदय देहातमें रहता है। इसीलिए ट्रस्टियोंने वह काम पूरी तरह मुझे सौंप दिया है।

अब अपनी कल्पनाके कुदरती उपचारके बारेमें थोड़ासा कह दूं। समय-समय पर इस विषयमें मैंने थोड़ा-थोड़ा लिखा है। मगर चूंकि इस विचारका अभी विकास हो रहा है, इसलिए यहां मैं यह बता दूं कि उरुलीकांचनमें कुदरती उपचारकी मर्यादा क्या है। देहातकी या कहिये कि शहरकी भी व्याधि यानी बीमारी तीन प्रकारकी होती है— शरीरकी, मनकी और आत्माकी; और जो बात एक व्यक्तिको लागू होती है वही सामान्यतः दूसरे व्यक्तिको और सारे समाजको भी लागू होती है।

उरुलीकांचनमें ज्यादातर व्यापारी लोग रहते हैं। गांवमें एक तरफ मांग लोग रहते हैं, दूसरी तरफ महार और तीसरी तरफ कांचन जातिके लोग। कांचन जातिके लोगोंके कारण ही इस गांवका नाम उरुलीकांचन पड़ा है। वहां गारुड़ी (मदारी) जातिके लोग भी रहते हैं, जिन्हें कानूनसे जरायमपेशा माना जाता है। मांग लोग रस्सी वगैरा बनानेका धंधा करते हैं। लड़ाईके दिनोंमें इनका धंधा अच्छा चलता था। परन्तु अब इनका धंधा गिर गया है, इसलिए ये बहुत तंगीमें रहते हैं। नैसर्गिक उपचारकके सामने सवाल यह है कि मांग लोगोंकी इस बीमारीका, जो छोटी बीमारी नहीं है, क्या करे? समाजके व्यापारी लोगोंको उनका यह सामाजिक रोग मिटाना चाहिये। इसमें दवाखानेकी कोई दवा या कोई इलाज काम नहीं दे सकता। फिर भी यह बीमारी कॉलरा या हैजेकी बीमारीसे कम खतरनाक नहीं है। उनके चन्द मकान तो ऐसे हैं जिन्हें जला ही देना चाहिये। लेकिन जलानेसे उनके लिए नये मकान तो नहीं बन जायेंगे। वे बारिशसे कैसे बचें? ठंडसे कैसे बचें? अपना सामान कहां रखें? ये सब सवाल पैदा होते हैं। कुदरती उपचारक अपनी आंखें उनकी ओरसे बन्द नहीं कर सकता। गारुड़ी लोगोंका क्या किया जाय? वे जान-बूझकर शौकके खातिर गुनाह नहीं करते। जमानोंकी पुरानी उनकी यह आदत हो गई है। इसलिए उनको जरायम-पेशा कहते हैं। इस बुरी आदतको छुड़वानेका काम उरुलीकांचनवालोंका है। नैसर्गिक उपचारक इस कामकी उपेक्षा नहीं कर सकता। उसके

सामने ऐसी-ऐसी कई समस्याएं पैदा हो जाती हैं। इस तरह विचार करने पर हम देख सकते हैं कि नैसर्गिक उपचारकका काम शुद्ध स्वराज्यका काम बन जाता है और उसका क्षेत्र भी बहुत विशाल हो जाता है। ईश्वरकी दयासे इसमें सफलता मिल सकती है, बशर्ते कि उरुलीकांचनमें रहनेवाले और काम करनेवाले हम सब लोग सच्चे और ध्येय तक पहुंचनेके लिए निश्चयी रहें।

हरिजनसेवक, ११–८–'४६

५

रामनाम और कुदरती उपचार

मेरे पिताजीकी बीमारीका थोड़ा समय पोरबन्दरमें बीता था। वहां वे रामजीके मन्दिरमें रोज रातके समय रामायण सुनते थे। सुनानेवाले बीलेश्वरके लाधा महाराज नामक एक पंडित थे। वे रामचन्द्रजीके परम भक्त थे। उनके बारेमें यह कहा जाता था कि उन्हें कोढ़की बीमारी हुई, तो उसका इलाज करनेके बदले उन्होंने बीलेश्वर महादेव पर चढ़े हुए बेलपत्र लेकर कोढ़वाले अंग पर बांधे और केवल रामनामका जप शुरू किया। अन्तमें उनका कोढ़ जड़मूलसे नष्ट हो गया। यह बात सच हो या न हो, हम सुननेवालोंने तो सच ही मानी। यह भी सच है कि जब लाधा महाराजने कथा शुरू की, तब उनका शरीर बिलकुल नीरोग था।

आत्मकथा, पृ० २४; १९५७

रामनाम सब जगह मौजूद रहनेवाली रामबाण दवा है, यह शायद मैंने पहले-पहल उरुलीकांचनमें ही साफ-साफ जाना था। जो उसका पूरा उपयोग जानता है, उसे जगतमें कमसे कम बाहरी प्रयत्न करना पड़ता है। फिर भी उसका काम बड़ेसे बडा होता है।

हरिजनसेवक, २२–६–'४७

मेरे रामनामका जंतर-मंतरसे कोई सम्बन्ध नहीं है। मैंने कहा है कि रामनाम अथवा किसी भी रूपमें हृदयसे ईश्वरका नाम लेना एक महान शक्तिका सहारा लेना है। वह शक्ति जो कर सकती है, सो दूसरी कोई शक्ति नहीं कर सकती। उसके मुकाबले अणुबम भी कोई चीज नहीं। उससे सब रोग दूर होते हैं। हा, यह सही है कि हृदयसे नाम लेनेकी बात कहना आसान है, लेकिन वैसा करना बहुत कठिन है। वह कितनी ही कठिन क्यों न हो, फिर भी वही सर्वोपरि वस्तु है।

हरिजनसेवक, १३–१०–'४६

दूसरी सब चीजोंकी तरह मेरी कुदरती उपचारकी कल्पनाने भी धीरे-धीरे विकास किया है। बरसोंसे मेरा यह विश्वास रहा है कि जो मनुष्य अपनेमें ईश्वरका अस्तित्व अनुभव करता है और इस तरह विकाररहित स्थिति प्राप्त कर चुका है, वह लम्बे जीवनके रास्तेमें आनेवाली सारी कठिनाइयोंको जीत सकता है। मैंने जो देखा और धर्मशास्त्रोंमें पढ़ा है, उसके आधार पर मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि जब मनुष्यमें उस अदृश्य शक्तिके प्रति पूर्ण जीवित श्रद्धा पैदा हो जाती है, तब उसके शरीरमें भीतरी परिवर्तन होता है। लेकिन यह सिर्फ इच्छा करने मात्रसे नहीं हो जाता। इसके लिए हमेशा सावधान रहने और अभ्यास करनेकी जरूरत रहती है। और दोनोंके होते हुए भी यदि ईश्वर-कृपा न हो, तो मानव-प्रयत्न व्यर्थ जाता है।

प्रेस-रिपोर्ट, १२–६–'४५

कुदरती इलाज और उपचारका अर्थ है, ऐसे उपचार या इलाज जो मनुष्यके लिए योग्य हैं। मनुष्य यानी मनुष्य-मात्र। मनुष्यमें मनुष्यका शरीर तो है ही, लेकिन उसमें मन और आत्मा भी है। इसलिए सच्चा कुदरती इलाज तो रामनाम ही है। इसीलिए रामबाण शब्द निकला है। रामनाम ही रामबाण इलाज है। मनुष्यके लिए कुदरतने उसीको योग्य माना है। कोई भी व्याधि हो, अगर मनुष्य हृदयसे रामनाम ले, तो उसकी व्याधि नष्ट होनी चाहिये। रामनाम यानी ईश्वर, खुदा, अल्लाह, गॉड। ईश्वरके अनेक नाम हैं। उनमें से जो जिसे ठीक लगे,

उसे वह चुन ले; लेकिन उसमें हार्दिक श्रद्धा हो और श्रद्धाके साथ प्रयत्न हो। यह कैसे हो?

मनुष्यका पुतला जिन चीजोंका बना है, उन्हींसे वह इसका इलाज ढूंढ़े। पुतला पृथ्वी, पानी, आकाश, तेज और वायुका बना है। इन पांच तत्त्वोंसे जो मिल सके सो वह ले। उसके साथ रामनाम तो अनिवार्य रूपसे चलता ही रहे। इतना होते हुए भी यदि शरीरका नाश हो, तो हम होने दें और हर्षपूर्वक शरीर छोड़ दें। दुनियामें ऐसा कोई इलाज नहीं निकला है, जिससे शरीर अमर बन सके। अमर तो केवल आत्मा ही है। उसे कोई मार नहीं सकता। उसके लिए शुद्ध शरीर पैदा करनेका प्रयत्न तो सब लोग करें।

यदि हम ऊपरकी विचारसरणीको स्वीकार करें, तो उसी प्रयत्नमें कुदरती इलाज अपने-आप मर्यादित हो जाता है। और इससे आदमी बड़े-बड़े अस्पतालों और योग्य डॉक्टरों वगैराकी व्यवस्था करनेसे बच जाता है। दुनियाके असंख्य लोग दूसरा कुछ कर भी नहीं सकते। और जिसे असंख्य लोग नहीं कर सकते, उसे थोड़े लोग क्यों करें?

हरिजनसेवक, ३–३–'४६

यह देखकर कि कुदरती इलाजमें मैंने रामनामको रोग मिटानेवाला माना है और इस संबंधमें कुछ लिखा है, वैद्यराज श्री गणेशशास्त्री जोशी मुझसे कहते हैं कि इसके संबंधका और इससे मिलता-जुलता साहित्य आयुर्वेदमें काफी पाया जाता है। रोगको मिटानेमें कुदरती इलाजका अपना बड़ा स्थान है और उसमें भी रामनाम विशेष है। यह मानना चाहिये कि जिन दिनों चरक, वाग्भट वगैराने आयुर्वेदके ग्रन्थ लिखे थे, उन दिनों ईश्वरको रामनामके रूपमें पहचाननेकी रूढ़ि नहीं पड़ी थी। उस समय विष्णुके नामकी महिमा थी। मैंने तो बचपनसे रामनामके जरिये ही ईश्वरको भजा है। लेकिन मैं जानता हूं कि ईश्वरको ॐ नामसे भजो या संस्कृत तथा प्राकृतसे लेकर इस देशकी या दूसरे देशकी किसी भी भाषाके नामसे उसको जपो, परिणाम एक ही होता है। ईश्वरको नामकी जरूरत नहीं है। वह और उसका कानून दोनों एक ही हैं।

इसलिए ईश्वरी नियमोंका पालन ही ईश्वरका जप है। अतएव केवल तात्त्विक दृष्टिसे देखें तो जो ईश्वरकी नीतिके साथ तदाकार हो गया है, उसे जपकी जरूरत नहीं है। अथवा जिसके लिए जप या नामका उच्चारण सांस-उसांसकी तरह स्वाभाविक हो गया है, वह ईश्वरमय बन चुका है। यानी ईश्वरकी नीतिको वह सहज ही पहचान लेता है और सहज भावसे उसका पालन करता है। जो इस तरह बरतता है, उसके लिए दूसरी दवाकी जरूरत ही क्या है?

ऐसा होने पर भी जो दवाओंकी दवा है, यानी राजा दवा है, उसीको हम कमसे कम पहचानते हैं। जो पहचानते हैं वे उसे भजते नहीं; और जो भजते हैं वे सिर्फ जबानसे भजते हैं, दिलसे नहीं भजते। इस कारण वे तोतेके स्वभावकी नकल भर करते हैं, अपने स्वभावका अनुसरण नहीं करते। इसलिए वे सब ईश्वरको 'सर्व-रोगहारी' के रूपमें नहीं पहचानते।

पहचानें भी कैसे? यह दवा न तो वैद्य उन्हें देते हैं, न हकीम और न डॉक्टर। खुद वैद्यों, हकीमों और डॉक्टरोंको भी इस पर आस्था नहीं है। यदि वे बीमारोंको घर बैठे गंगा जैसी यह दवा दें, तो उनका धंधा कैसे चले? इसलिए उनकी दृष्टिमें तो उनकी पुड़िया और शीशी ही रामबाण दवा है। इस दवासे उनका पेट भरता है और रोगीको हाथोंहाथ फल भी देखनेको मिलता है। "फलां-फलांने मुझको चूरन दिया और मैं अच्छा हो गया।" कुछ लोग ऐसा कहनेवाले निकल आते हैं और वैद्यका व्यापार चल पड़ता है।

वैद्यों और डॉक्टरोंके रामनाम रटनेकी सलाह देनेसे ही रोगीका दुःख दूर नहीं होता। जब वैद्य खुद उसके चमत्कारको जानता है, तभी रोगीको भी उसके चमत्कारका पता चल सकता है। रामनाम केवल दूसरोंको उपदेश करनेकी चीज नहीं, वह तो अनुभवकी प्रसादी है। जिसने उसका अनुभव प्राप्त किया है, वही यह दवा दे सकता है, दूसरा नहीं।

वैद्यराजने मुझे चार मंत्र लिखकर दिये हैं। उनमें चरक ऋषिका मंत्र सीधा और सरल है। उसका अर्थ इस प्रकार है:

चराचरके स्वामी विष्णुके हजार नामोंमें से एकका भी जप करनेसे सब रोग शान्त होते हैं।

विष्णुं सहस्रमूर्धानं चराचरपतिं विभुम्।
स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरान् सर्वान् व्यपोहति।।

—चरक चिकित्सा, अ० ३७, श्लोक ३११

हरिजनसेवक, २४–३–'४६

एक प्रसिद्ध वैद्यने अभी उस दिन मुझसे कहा था : 'मैंने अपनी सारी जिन्दगी मेरे पास आनेवाले बीमारोंको तरह-तरहकी दवाकी पुड़ियां देनेमें बिताई है। लेकिन जब आपने शरीरके रोगोंको मिटानेके लिए रामनामकी दवा बताई, तब मुझे याद पड़ा कि चरक और वाग्भट जैसे हमारे पुराने धन्वन्तरियोंके वचनोंसे भी आपकी बातको पुष्टि मिलती है।' आध्यात्मिक रोगोंको (आधियोंको) मिटानेके लिए रामनामके जपका इलाज बहुत पुराने जमानेसे हमारे यहां होता आया है। लेकिन चूंकि बड़ी चीजमें छोटी चीज भी समा जाती है, इसलिए मेरा यह दावा है कि हमारे शरीरकी बीमारियोंको दूर करनेके लिए भी रामनामका जप सब इलाजोंका इलाज है। प्राकृतिक उपचारक अपने बीमार से यह नहीं कहेगा कि 'तुम मुझे बुलाओ तो मैं तुम्हारी सारी बीमारी दूर कर दूं।' वह तो बीमारको सिर्फ यह बतायेगा कि प्राणीमात्रमें रहनेवाला और सब बीमारियोंको मिटानेवाला तत्त्व कौनसा है। किस तरह उस तत्त्वको जाग्रत किया जा सकता है और कैसे उसको अपने जीवनकी प्रेरक शक्ति बनाकर उसकी मददसे अपनी बीमारियोंको दूर किया जा सकता है। अगर हिन्दुस्तान इस तत्त्वकी ताकतको समझ जाय तो हम आजाद तो हो ही जायें, लेकिन उसके अलावा आज हमारा जो देश बीमार और कमजोर तबीयतवालोंका घर बन बैठा है, वह तन्दुरुस्त और सशक्त शरीरवाले लोगोंका देश बन जाय।

रामनामकी शक्तिकी अपनी कुछ मर्यादा है और उसके कारगर होनेके लिए कुछ शर्तोंका पूरा होना जरूरी है। रामनाम कोई जंतर-मंतर या जादू-टोना नहीं है। जो लोग खा-खाकर खूब मोटे हो

गये हैं और जो अपने मुटापेकी और उसके साथ बढ़नेवाली बादीकी आफतसे बच जानेके बाद फिर तरह-तरहके पकवानोंका मजा चखनेके लिए इलाजकी तलाशमें रहते हैं, उनके लिए रामनाम किसी कामका नहीं। रामनामका उपयोग तो अच्छे कामके लिए होता है। बुरे कामके लिए हो सकता होता, तो चोर और डाकू सबसे बड़े भक्त बन जाते। रामनाम उनके लिए है, जो दिलके साफ हैं और जो दिलकी सफाई करके हमेशा स्वच्छ और पवित्र रहना चाहते हैं। भोग-विलासकी शक्ति या सुविधा पानेके लिए रामनाम कभी साधन नहीं बन सकता। बादीका इलाज प्रार्थना नहीं, उपवास है। उपवासका काम पूरा होने पर ही प्रार्थनाका काम शुरू होता है, यद्यपि यह सच है कि प्रार्थनासे उपवासका काम आसान और हलका बन जाता है। इसी तरह एक तरफ आप अपने शरीरमें दवाकी बोतलें उंड़ेला करें और दूसरी तरफ मुंहसे रामनाम लिया करें, तो वह बेमतलब मजाक ही होगा। जो डॉक्टर बीमारकी बुराइयोंको बनाये रखनेमें या उन्हें सहेजनेमें अपनी होशियारीका उपयोग करता है, वह खुद नीचे गिरता है और अपने बीमारको भी नीचे गिराता है।* अपने शरीरको अपने सिरजनहारकी पूजाके लिए मिला हुआ एक साधन समझनेके बदले उसीकी पूजा करने और उसको किसी भी तरह बनाये रखनेके लिए पानीकी तरह पैसा बहानेसे बढ़कर बुरी गति और क्या हो सकती है? इसके खिलाफ रामनाम रोगको मिटानेके साथ ही साथ आदमीको भी शुद्ध बनाता है और इस तरह उसको ऊंचा उठाता है। यही रामनामका उपयोग है, और यही उसकी मर्यादा है।

हरिजनसेवक, ७–४–'४६

---

* हमें शरीरके बदले आत्माके चिकित्सकोंकी जरूरत है। अस्पतालों और डॉक्टरोंकी वृद्धि कोई सच्ची सभ्यताकी निशानी नहीं है। हम अपने शरीरसे जितनी ही कम मोहब्बत करें, उतना ही हमारे और सारी दुनियाके लिए अच्छा है।

हिन्दी नवजीवन, ६–१०–'२७

ईश्वरकी स्तुति और सदाचारका प्रचार हर तरहकी बीमारीको रोकनेका अच्छेसे अच्छा और सस्तेसे सस्ता इलाज है। मुझे इसमे जरा भी शक नहीं। अफसोस इस बातका है कि वैद्य, हकीम और डॉक्टर इस सस्ते इलाजका उपयोग ही नहीं करते। बल्कि हुआ यह है कि उनकी किताबोंमें इस इलाजकी कोई जगह ही नहीं रही और यदि कहीं है तो उसने जन्तर-मन्तरकी शक्ल अख्तियार करके लोगोंको वहमके कुएंमें ढकेला है। ईश्वरकी स्तुतिका या रामनामका वहमसे कोई सम्बन्ध नहीं। यह कुदरतका सुनहला कानून है। जो इस पर अमल करता है, वह बीमारीसे बचा रहता है। जो अमल नहीं करता, वह बीमारियोंसे घिरा रहता है। तन्दुरुस्त रहनेका जो कानून है, वही बीमार होनेके बाद बीमारियोंसे छुटकारा पानेका भी कानून है। सवाल यह होता है कि जो रामनाम जपता है और सदाचारसे रहता है, उसको बीमारी हो ही क्यों? सवाल ठीक ही है। आदमी स्वभावसे ही अपूर्ण है। समझदार आदमी पूर्ण बननेकी कोशिश करता है। लेकिन पूर्ण वह कभी बन नहीं पाता, इसलिए अनजाने वह गलतियां करता है। सदाचारमें ईश्वरके बनाये सभी कानून समा जाते हैं, लेकिन उसके सब कानूनोंको जाननेवाला संपूर्ण पुरुष हमारे पास नहीं है। उदाहरणके लिए, एक कानून यह है कि हदसे ज्यादा काम न किया जाय। लेकिन कौन बतावे कि यह हद कहां खतम होती है? यह चीज तो बीमार पड़ने पर ही मालूम होती है। मिताहार और युक्ताहार यानी कम और जरूरतके मुताबिक खाना कुदरतका दूसरा कानून है। कौन बतावे कि इसकी हद कब लांघी जाती है? मैं कैसे जानूं कि मेरे लिए युक्ताहार क्या है? ऐसी तो कई बातें सोची जा सकती हैं। इस सबका निचोड़ यही है कि हर आदमीको अपना डॉक्टर खुद बनकर अपने ऊपर लागू होनेवाले कानूनका पता लगा लेना चाहिये। जो इसका पता लगा सकता है और उस पर अमल कर सकता है, वह १२५ वर्ष तक अवश्य जीयेगा।

डॉक्टर मित्रोंका यह दावा है कि वे पूरी तरह कुदरती इलाज करनेवाले हैं; क्योंकि दवायें जितनी भी हैं, सब कुदरतने ही बनाई

हैं। डॉक्टर तो उनकी नई मिलावटें भर करते हैं। इसमें बुरा क्या है? इस तरह हर चीज पेश की जा सकती है। मैं तो यही कहूंगा कि रामनामके सिवा जो कुछ भी किया जाता है, वह कुदरती इलाजके खिलाफ है। इस मध्यबिन्दुसे हम जितने दूर हटते हैं, उतने ही असल चीजसे दूर जा पड़ते हैं। इस तरह सोचते हुए मैं यह कहूंगा कि पांच महाभूतोंका असल उपयोग कुदरती इलाजकी हद है। इसके आगे बढ़नेवाला वैद्य अपने इर्द-गिर्द जो दवाएं उगती हों या उगाई जा सकें, उनका इस्तेमाल सिर्फ लोगोंके भलेके लिए करे, पैसे कमानेके लिए नहीं, तो वह भी कुदरती इलाज करनेवाला कहला सकता है। ऐसे वैद्य आज कहां हैं? आज तो वे पैसा कमानेकी होड़ाहोड़ीमें पड़े हैं। छानबीन और शोध-आविष्कार कोई करता नहीं। उनके मानसिक आलस्य और लोभकी वजहसे आयुर्वेद आज कंगाल बन गया है।

हरिजनसेवक, १९–५–४६

प्रार्थनामें जो भजन गाया गया था, उसका आधार लेकर गांधीजीने वहां आये हुए उरुलीकांचनके लोगोंके सामने शरीरकी बीमारियोंको मिटानेवाली बढ़ियासे बढ़िया कुदरती दवाके रूपमें रामनाम पेश किया। "अभी हमने जो भजन गाया उसमें भक्त कहता है: 'हरि! तुम हरो जनकी पीर।' यानी हे भगवान, तू अपने भक्तोंका दुःख दूर कर। इसमें जिस दुःखकी बात कही गई है, वह सब तरहके दुःखोंसे सम्बन्ध रखती है। मन या तनकी किसी खास बीमारीकी चर्चा इसमें नहीं है।" फिर गांधीजीने लोगोंको कुदरती इलाजकी सफलताके नियम बताये: "रामनामके प्रभावका आधार इस बात पर है कि उसमें आपकी सजीव श्रद्धा है या नहीं। अगर आप गुस्सा करते हैं, सिर्फ शरीरकी हिफाजतके लिए नहीं बल्कि मौज-शौकके लिए खाते और सोते हैं, तो समझिये कि आप रामनामका सच्चा अर्थ नहीं जानते। इस तरह जो रामनाम जपा जायगा, उसमें सिर्फ होंठ हिलेंगे, दिल पर उसका कोई असर न होगा। रामनामका फल पानेके लिए आपको नाम जपते समय उसमें

लीन हो जाना चाहिये, और उसका प्रभाव आपके जीवनके तमाम कामोंमें दिखाई पड़ना चाहिये।"

दूसरे दिन सुबहसे बीमार आने लगे। कोई ३० होंगे। गांधीजीने उनमें से पांच या छहको देखा और उन सबकी बीमारीके प्रकारको देखकर थोड़े हेरफेरके साथ सबको एकसे ही इलाज सुझाये। जैसे, रामनामका जप, सूर्य-स्नान, बदनको जोरसे रगड़ना या घिसना, कटि-स्नान, दूध, छाछ, फल, फलोंका रस और पीनेके लिए साफ और ताजा पानी। शामकी प्रार्थना-सभामें उन्होंने अपने विषयको समझाते हुए कहा: "सचमुच यह पाया गया है कि मन और शरीरकी तमाम आधि-व्याधियोंका एक ही समान कारण है। इसलिए उन सबका एक ही सामान्य इलाज भी हो, तो उसमें अचरजकी कोई बात नहीं। रोगोंकी तरह इलाज भी एक ही ढंगसे हो सकते हैं। शास्त्र भी ऐसा कहते हैं। इसलिए आज सुबह मेरे पास जितने बीमार आये थे, उन सबको मैंने रामनामके साथ करीब-करीब एकसा ही इलाज सुझाया था। लेकिन अपने रोजमर्राके जीवनमें जब शास्त्र हमें अनुकूल नहीं होते, तो हम उनके वचनोंका मनचाहा अर्थ निकालकर अपना काम चला लेते हैं। मनुष्यने इस कलाका अच्छा विकास कर लिया है। हमने अपने मन पर एक ऐसे भ्रम या वहमको सवार होने दिया है कि शास्त्रोंका उपयोग सिर्फ इसलिए है कि अगले जन्ममें जीवका आध्यात्मिक कल्याण हो और धर्मका पालन इसलिए करना है कि मरनेके बाद पुण्यकी यह कमाई मनुष्यके काम आ सके। मेरा मत ऐसा नहीं है। अगर इस जीवनके व्यवहारमें धर्मका कोई उपयोग नहीं हो, तो अगले जन्ममें मुझे उससे क्या संबंध हो सकता है?

"इस दुनियामें बिरला ही कोई ऐसा मनुष्य होगा, जो शरीर और मनकी सभी बीमारियोंसे बिलकुल मुक्त हो। तन और मनकी कुछ बीमारियां तो ऐसी हैं, जिनका इस दुनियामें कोई इलाज ही नहीं। जैसे, अगर शरीरका कोई अंग खंडित हो गया हो, तो उसको फिरसे पैदा कर देनेका चमत्कार रामनाममें कहांसे आये? लेकिन उसमें इससे भी बड़ा चमत्कार कर दिखानेकी ताकत है। वह अंग-भंग या बीमारियोंके

बावजूद सारी जिन्दगी अटूट शान्तिके* साथ बितानेकी शक्ति देता है और उमर पूरी होने पर जिस जगह सबको जाना पड़ता है, वहां जानेकी बारी आने पर मौतके दुःखको और चिताकी विजयके डरको मिटा देता है। यह क्या कोई छोटा-मोटा चमत्कार है? जब आगे-पीछे मौत आने ही वाली है, तो वह कब आयेगी इस चिन्तामें हम पहलेसे ही क्यों मरें?"

इसके बाद उन्होंने लोगोंके सामने कुदरती उपचारके सिद्धान्तोंके बारेमें पहला प्रवचन किया। नीचे उसका सार दिया गया है:

"मनुष्यका भौतिक शरीर पृथ्वी, पानी, आकाश, तेज और वायु नामके पांच तत्त्वोंसे बना है, जो पंच महाभूत कहलाते हैं। इनमें से तेज तत्त्व शरीरको शक्ति पहुंचाता है। इन सबमें सबसे जरूरी चीज हवा है। आदमी बिना खाये कई हफ्तों तक जी सकता है, पानीके बिना भी वह कुछ घण्टे बिता सकता है, लेकिन हवाके बिना तो कुछ ही मिनटोंमें उसकी देहका अन्त हो सकता है। इसलिए ईश्वरने हवाको सबके लिए सुलभ बनाया है। अन्न और पानीकी तंगी कभी-कभी पैदा हो सकती है, हवाकी कभी नहीं। ऐसा होते हुए भी हम बेवकूफोंकी तरह अपने घरोंके अन्दर खिड़की और दरवाजे बन्द करके सोते हैं और ईश्वरकी प्रत्यक्ष प्रसादी जैसी ताजी और साफ हवासे फायदा नहीं उठाते। अगर चोरोंका डर लगता है तो रातमें अपने घरोंके दरवाजे और खिड़कियां बन्द रखिये, लेकिन खुद अपनेको उनमें बन्द रखनेकी क्या जरूरत है?

"साफ और ताजी हवा पानेके लिए आदमीको खुलेमें सोना चाहिये। लेकिन खुलेमें सोकर धूल और गन्दगीसे भरी हवा लेनेका कोई मतलब नहीं। इसलिए आप जिस जगह सोयें वहां धूल और गन्दगी नहीं होनी चाहिये। धूल और सरदीसे बचनेके लिए कुछ लोग सिरसे पैर तक ओढ़ लेनेके आदी होते हैं। यह तो बीमारीसे भी बदतर इलाज हुआ। दूसरी बुरी आदत मुंहसे सांस लेनेकी है। नथुनोंकी राह

---

* रामनाम जैसी शान्ति प्रदान करनेवाली दूसरी कोई शक्ति नहीं है। — गांधीजी, प्रेस-रिपोर्ट, १०–१–'४६

फेफड़ोंमें पहुंचनेवाली हवा छनकर साफ हो जाती है और उसे जितना गरम होना चाहिये उतनी गरम भी वह हो जाती है।

"जो आदमी जहां चाहे वहां और जिस तरह चाहे उस तरह थूक-कर, कूड़ा-करकट डालकर, गन्दगी फैलाकर या दूसरे तरीकोंसे हवाको गन्दी करता है, वह कुदरतका और मनुष्यका अपराध करता है। मनुष्यका शरीर ईश्वरका मंदिर है। उस मंदिरमें जानेवाली हवाको जो गन्दी करता है, वह मन्दिरको भी बिगाड़ता है। उसका रामनाम लेना व्यर्थ है।"

हरिजनसेवक, ७–४–'४६

कुदरती उपचारके दो पहलू हैं: एक, ईश्वरकी शक्ति यानी राम-नामसे रोग मिटाना; और दूसरा, ऐसे उपाय करना कि रोग पैदा ही न हो सके। मेरे साथी लिखते हैं कि उरुलीकांचन गांवके लोग गांवको साफ रखनेमें मदद देते हैं। जिस जगह शरीर-सफाई, घर-सफाई और ग्राम-सफाई हो, युक्ताहार हो और योग्य व्यायाम हो, वहां कमसे कम बीमारी होती है। और अगर चित्तशुद्धि भी हो, तो कहा जा सकता है कि बीमारी असम्भव हो जाती है। रामनामके बिना चित्तशुद्धि नहीं हो सकती। अगर देहातवाले इतनी बात समझ जायं, तो उन्हें वैद्य, हकीम या डॉक्टरकी जरूरत न रह जाय।

कांचन गांवमें गायें नामको ही हैं। इसे मैं कमनसीबी मानता हूं। कुछ भैंसें हैं। लेकिन मेरे पास जितने प्रमाण हैं, वे बताते हैं कि गाय सबसे ज्यादा उपयोगी प्राणी है। गायका दूध भी खानेमें आरोग्यप्रद है और गायका जो उपयोग किया जा सकता है, वह भैंसका कभी नहीं किया जा सकता। मरीजोंके लिए तो वैद्य लोग गायके दूधका ही उपयोग बतलाते हैं। तन्दुरुस्ती अच्छी रखनेके लिए दूधकी बहुत ज्यादा जरूरत रहती है।

कुदरती उपचारके गर्भमें मानव-जीवनकी आदर्श रचनाकी बात है और उसमें देहातकी या शहरकी आदर्श रचना आ ही जाती है। और उसका मध्यबिन्दु तो ईश्वर ही हो सकता है।

हरिजनसेवक, २६–५–'४६

कुदरती उपचारमें जीवन-परिवर्तनकी बात आती है। यह कोई वैद्यकी दी हुई पुड़िया लेनेकी बात नहीं है और न अस्पताल जाकर मुफ्त या फीस देकर दवा लेने या उसमें रहनेकी ही बात है। जो आदमी मुफ्त दवा लेता है, वह भिक्षुक बनता है। जो कुदरती उपचार करता है, वह कभी भी भिक्षुक नहीं बनता। वह अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाता है और अच्छा होनेका उपाय खुद ही कर लेता है। वह अपने शरीरमें से जहर निकाल कर ऐसी कोशिश करता है, जिससे दुबारा बीमार न पड़ सके।

कुदरती इलाजमें मध्यबिन्दु तो रामनाम ही है न? रामनामसे आदमी सब रोगोंसे सुरक्षित बनता है। शर्त यह है कि रामनाम भीतरसे निकलना चाहिये। और रामनामके भीतरसे निकलनेके लिए नियम-पालन जरूरी हो जाता है। उस हालतमें मनुष्य रोग-रहित होता है। इसमें न तो कष्टकी बात है, न खर्चकी। मुसम्बी खाना उपचारका अनिवार्य अंग नहीं है।

पथ्य भोजन—युक्ताहार—अवश्य ही इसका अनिवार्य अंग है। हमारे देहात हमारी तरह ही कंगाल हैं। देहातमें साग-सब्जी, फल, दूध वगैरा पैदा करना कुदरती इलाजका खास अंग है। इसमें जो वक्त खर्च होता है, वह व्यर्थ तो कभी जाता ही नहीं; बल्कि उससे सभी देहातियोंको और आखिरकार सारे हिन्दुस्तानको लाभ होता है।

हरिजनसेवक, २–६–'४६

मेरा कुदरती इलाज तो सिर्फ गांववालोंके और गांवोंके लिए ही है। इसलिए उसमें खुर्दबीन, एक्सरे वगैराकी कोई जगह नहीं है। और न कुदरती इलाजमें कुनैन, एमिटिन, पेनिसिलिन जैसी दवाइयोंकी ही गुंजाइश है। उसमें अपनी सफाई, घरकी सफाई, गांवकी सफाई और तन्दुरुस्तीकी हिफाजतका पहला स्थान है। और इतना करना काफी है। इसकी तहमें दृष्टि यह है कि अगर हर आदमी इस कलामें निष्णात हो सके, तो उसे कोई बीमारी ही न हो। और, बीमारी आ जाय तो उसे मिटानेके लिए कुदरतके सभी कानूनों पर अमल करनेके साथ-साथ रामनाम ही सच्चा इलाज है। यह इलाज सार्वजनिक या

आम नहीं हो सकता। जब तक खुद इलाज करनेवालेमें रामनामकी सिद्धि न आ जाय, तब तक रामनाम-रूपी इलाजको एकदम आम नहीं बनाया जा सकता।

हरिजनसेवक, ११-८-'४६

हमें अपना यह वहम दूर करना होगा कि जो कुछ करना है, उसके लिए पश्चिमकी तरफ नजर दौड़ाने पर ही आगे बढ़ा जा सकता है। अगर कुदरती इलाज सीखनेके लिए पश्चिममें जाना पड़े, तो मैं नहीं मानता कि वह इलाज हिन्दुस्तानके कामका होगा। यह इलाज तो सबके घरमें मौजूद है। हमेशा कुदरती इलाज करनेवालेकी राय लेनेकी जरूरत भी न रहनी चाहिये। वह इतनी आसान चीज है कि हरएक आदमीको उसे सीख लेना चाहिये। अगर रामनाम लेना सीखनेके लिए विलायत जाना जरूरी हो, तब तो हम कहींके भी न रहेंगे। रामनामको मैंने अपनी कल्पनाके कुदरती इलाजकी बुनियाद माना है। इसी तरह यह सहज ही समझमें आने लायक बात है कि पृथ्वी, पानी, आकाश, तेज और वायुके इलाजके लिए समुद्र-पार जानेकी जरूरत हो ही नहीं सकती। दूसरा जो कुछ भी सीखना है वह सब यहीं है — हमारे गांवोंमें मौजूद है। देहाती दवायें, जड़ी-बूटियां, दूसरे देशोंमें नहीं मिलेंगी। वे तो आयुर्वेदमें ही हैं। अगर आयुर्वेदवाले धूर्त हों, तो पश्चिम जा आनेसे वे कुछ भले नहीं बन जायेंगे। शरीर-शास्त्र पश्चिमसे आया है। सब कोई कबूल करेंगे कि उसमें से बहुत-कुछ सीखने लायक है। लेकिन उसे सीखनेके बहुतसे जरिये इस देशमें मिल सकते हैं। मतलब यह कि पश्चिममें जो कुछ अच्छा है, वह ऐसा है और होना चाहिये कि सब जगह मिल सके। साथ ही, यहां यह भी कह देना जरूरी है कि कुदरती इलाज सीखनेके लिए यह बिलकुल जरूरी नहीं कि शरीर-शास्त्र सीखा ही जाय।

कूने, जुस्ट, फादर क्नेइप वगैरा लोगोंने जो लिखा है, सो सबके लिए है और सब जगहोंके लिए है। वह सीधा है। उसे जानना हमारा धर्म है। कुदरती इलाज जाननेवालोंके पास उसकी थोड़ी-बहुत जानकारी

होती है और होनी चाहिये। कुदरती इलाज अभी गांवोंमें तो दाखिल हुआ ही नहीं है। उस शास्त्रमें हम गहरे पैठे ही नहीं हैं। करोड़ोंको ध्यानमें रखकर उस पर सोचा नहीं गया है। अभी वह शुरू ही हुआ है। आखिर वह कहां जाकर रुकेगा, सो कोई कह नहीं सकता। सभी शुभ साहसोंकी तरह उसके पीछे भी तपकी शक्ति होना जरूरी है। नजर हमारी पश्चिमकी ओर न जाय, बल्कि अपने अन्दर जाय।

हरिजनसेवक, २–६–'४६

एक मित्र उलाहना देते हुए लिखते हैं:

"क्या आपका कुदरती इलाज और विश्वास-चिकित्सा कुछ मिलती-जुलती चीजें हैं? बेशक, रोगीको इलाजमें श्रद्धा तो होनी चाहिये। लेकिन कई ऐसे इलाज हैं जो सिर्फ विश्वाससे ही रोगीको अच्छा कर देते हैं; जैसे, माता (चेचक), पेटका दर्द वगैरा बीमारियोंके इलाज। शायद आप जानते हों कि माताका, खासकर दक्षिणमें कोई इलाज नहीं किया जाता। इसे सिर्फ ईश्वरकी माया मान लिया जाता है। हम मरिअम्मा देवीकी पूजा करते हैं और बहुतसे रोगी अच्छे हो जाते हैं। यह चीज एक चमत्कार-सी लगती है। जहां तक पेट-दर्दकी बात है, बहुतसे लोग तिरुपतिमें देवीकी मन्नतें मानते हैं। अच्छे होने पर उसकी मूर्तिके हाथ-पांव धोते हैं और दूसरी मानी हुई मन्नतें पूरी करते हैं। मेरी ही मांकी मिसाल लीजिये। उनके पेटमें दर्द रहता था। पर तिरुपति हो आनेके बाद उनकी वह तकलीफ दूर हो गई।

"कृपा करके इस बात पर प्रकाश डालिये और यह भी कहिये कि कुदरती इलाज पर भी लोग ऐसा ही विश्वास क्यों न रखें? इससे डॉक्टरोंका बार-बारका खर्च बच जायगा, क्योंकि चॉसरके कहनेके मुताबिक डॉक्टरका तो काम ही यह है कि वह दवाई बेचनेवालोंसे मिलकर बीमारको हमेशा बीमार बनाये रखे।"

जो मिसालें ऊपर दी गई हैं, वे न तो कुदरती इलाजकी हैं और न रामनामकी, जिसको मैंने इस इलाजमें शामिल किया है। उनसे

यह पता जरूर चलता है कि कुदरत बहुतसे रोगियोंको बिना किसी इलाजके भी अच्छा कर देती है। ये मिसालें यह भी दिखाती हैं कि हिन्दुस्तानमें वहम हमारी जिन्दगीका कितना बड़ा हिस्सा बन गया है। कुदरती इलाजका मध्यबिन्दु रामनाम तो वहमका दुश्मन है। जो बुराई करनेसे झिझकते नहीं, वे रामनामका अनुचित लाभ उठायेंगे। पर वे तो हर चीज या हर सिद्धान्तके साथ ऐसा ही करेंगे। खाली मुंहसे राम-नाम रटनेसे इलाजका कोई सम्बन्ध नहीं। अगर मैं ठीक समझा हूं तो, जैसा कि लेखकने बताया है, विश्वास-चिकित्सामें यह माना जाता है कि रोगी अन्ध-विश्वाससे अच्छा हो जाता है। यह मानना तो ईश्वरके नामकी हंसी उड़ाना है। रामनाम सिर्फ कल्पनाका चीज नहीं, उसे तो हृदयसे निकलना है। परमात्मामें जीता-जागता विश्वास हो और उसके साथ-साथ कुदरतके नियमोंका पालन किया जाय, तो ही किसी दूसरी मददके बिना रोगी बिलकुल अच्छा हो सकता है। सिद्धान्त यह है कि शरीरकी तन्दुरुस्ती तभी बिलकुल अच्छी हो सकती है, जब मनकी तन्दुरुस्ती पूरी-पूरी ठीक हो। और मन पूरा-पूरा ठीक तभी होता है, जब हृदय पूरा-पूरा ठीक हो। यह वह हृदय नहीं है जिसे डॉक्टर छाती जांचनेके यंत्र (स्टेथोस्कोप) से देखते हैं, बल्कि वह हृदय है जो ईश्वरका घर है। कहा जाता है कि अगर कोई अपने हृदयमें परमात्माको पहचान ले, तो एक भी अपवित्र या व्यर्थका विचार मनमें नहीं आ सकता। जहां विचार शुद्ध हों वहां बीमारी आ ही नहीं सकती। ऐसी स्थितिको पहुंचना शायद कठिन हो, पर इस बातको समझ लेना स्वास्थ्यकी पहली सीढ़ी है। दूसरी सीढ़ी है, समझनेके साथ-साथ कोशिश भी करना। जब किसीके जीवनमें यह बुनियादी परिवर्तन आता है, तो उसके लिए यह स्वाभाविक हो जाता है कि वह उसके साथ-साथ कुदरतके उन तमाम कानूनोंका पालन भी करे, जो आज तक मनुष्यने ढूंढ़ निकाले हैं। जब तक उनकी उपेक्षा की जाती है, तब तक कोई यह नहीं कह सकता कि मनुष्यका हृदय पवित्र है। यह कहना गलत न होगा कि अगर किसीका हृदय पवित्र है, तो उसका स्वास्थ्य रामनाम न लेते हुए भी उतना ही अच्छा रह सकता है। बात सिर्फ यह है कि रामनामके

सिवा पवित्रता पानेका दूसरा कोई उपाय मुझे मालूम नहीं। दुनियामें हर जगह प्राचीन ऋषि और संत भी इसी रास्ते पर चले हैं। और वे तो भगवानके बन्दे थे, कोई वहमी या ढोंगी आदमी नहीं थे।

अगर इसीका नाम 'क्रिश्चियन सायन्स' है, तो मुझे कुछ नहीं कहना है। मैं यह थोड़े कहता हूं कि रामनाम मेरी ही शोध है। जहां तक मैं जानता हूं, रामनाम तो ईसाई धर्मसे भी पुराना है।

एक भाई पूछते हैं कि क्या रामनाममें ऑपरेशनकी इजाजत नहीं है? क्यों नहीं? एक टांग अगर दुर्घटनामें कट गई है, तो रामनाम उसे थोड़े ही वापस ला सकता है? लेकिन बहुतसी हालतोंमें ऑपरेशन जरूरी नहीं होता। जहां जरूरी हो वहां ऑपरेशन करवा लेना चाहिये। बात सिर्फ इतनी है कि अगर भगवानके किसी बन्देका हाथ-पांव जाता रहे, तो वह इसकी चिन्ता नहीं करेगा। रामनाम कोई अटकलपच्चू तजवीज नहीं है और न कोई कामचलाऊ चीज है।

हरिजनसेवक, ९–६–'४६

एक मित्र लिखते हैं:

"आपने रामनामके द्वारा मलेरियाका इलाज सुझाया है। मेरी मुश्किल यह है कि शारीरिक बीमारियोंके लिए आध्यात्मिक शक्ति पर भरोसा करना मेरी समझसे बाहर है। मैं निश्चित रूपसे यह भी नहीं जानता कि मुझे अच्छा होनेका अधिकार भी है या नहीं। और क्या ऐसे समय जब मेरे देशवाले इतने दुःखमें पड़े हैं, मेरा अपनी मुक्तिके लिए प्रार्थना करना ठीक होगा? जिस दिन मैं रामनामको समझ जाऊंगा, उस दिन मैं उनकी मुक्तिके लिए प्रार्थना करूंगा। नहीं तो मैं अपने-आपको आजसे ज्यादा स्वार्थी महसूस करूंगा।"

मैं मानता हूं कि यह मित्र सत्यकी सच्ची शोध करनेवाले हैं। उनकी इस मुश्किलकी खुल्लमखुल्ला चर्चा मैंने इसलिए की है कि उन जैसे बहुतोंकी मुश्किलें इसी तरहकी हैं।

दूसरी शक्तियोंकी तरह आध्यात्मिक शक्ति भी मनुष्यकी सेवाके लिए है। सदियोंसे थोड़ी-बहुत सफलताके साथ शारीरिक रोगोंको ठीक करनेके लिए उसका उपयोग होता रहा है। इस बातको छोड़ दें तो भी अगर शारीरिक बीमारियोंके इलाजके लिए सफलताके साथ उसका उपयोग हो सकता हो, तो उसका उपयोग न करना बहुत बड़ी गलती है। क्योंकि मनुष्य जड़ तत्त्व भी है और आत्मा भी है। और इन दोनोंका एक-दूसरे पर असर होता है। अगर आप मलेरियासे बचनेके लिए कुनैन लेते हैं और इस बातका खयाल भी नहीं करते कि करोड़ोंको कुनैन नहीं मिलती, तो आप उस इलाजके उपयोगसे क्यों इनकार करते हैं, जो आपके अन्दर है? क्या सिर्फ इसलिए कि करोड़ों अपने अज्ञानके कारण उसका उपयोग नहीं करते? अगर करोड़ों अनजाने या जान-बूझकर भी गन्दे रहें, तो क्या आप अपनी सफाई और स्वास्थ्यका ध्यान छोड़ देंगे? मानव-दयाकी गलत कल्पनाके कारण अगर आप साफ नहीं रहेंगे, तो गन्दे और बीमार रहकर आप उन्हीं करोड़ोंकी सेवाका फर्ज भी अपने ऊपर नहीं ले सकेंगे। और यह बात तो पक्की है कि आत्माका रोगी या अस्वच्छ होना (उसे अच्छी और स्वच्छ रखनेसे इनकार करना) रोगी और गन्दा शरीर रखनेसे भी ज्यादा बुरा है।

मुक्तिका अर्थ यही है कि आदमी हर तरहसे अच्छा रहे। फिर आप अच्छे क्यों न रहें? अगर आप खुद अच्छे रहेंगे, तो दूसरोंको अच्छा रहनेका रास्ता दिखा सकेंगे; और इससे भी बढ़कर अच्छे होनेके कारण आप दूसरोंकी सेवा कर सकेंगे। लेकिन अगर आप अच्छे होनेके लिए पेनिसिलिन लेते हैं, यद्यपि आप जानते हैं कि दूसरोंको वह नहीं मिल सकती, तो जरूर आप पूरे स्वार्थी बनते हैं।

मुझे पत्र लिखनेवाले इन मित्रकी दलीलमें समझकी जो गड़बड़ी है वह साफ है।

हां, यह जरूर है कि कुनैनकी गोली या गोलियां खा लेना राम-नामके उपयोगके ज्ञानको पानेसे ज्यादा आसान है। कुनैनकी गोलियां खरीदनेकी कीमतसे इसमें कहीं ज्यादा मेहनत पड़ती है। लेकिन यह

मेहनत उन करोड़ोंके लिए उठानी चाहिये, जिनके नाम पर और जिनके लिए लेखक रामनामको अपने हृदयसे बाहर रखना चाहते हैं।

हरिजनसेवक, १–९–'४६

रामनाम जिसके हृदयसे निकलता है, उस मनुष्यकी पहचान क्या है? अगर हम इतना न समझ लें, तो रामनामकी फजीहत हो सकती है। वैसे भी होती तो है ही। माला पहनकर और तिलक लगाकर राम-नाम बड़बड़ानेवाले लोग तो बहुत मिलते हैं। कहीं मैं उनकी संख्याको बढ़ा तो नहीं रहा हूं? यह डर ऐसा-वैसा नहीं है। आजकलके मिथ्या-चारमें क्या करना चाहिये? क्या चुप रहना ही ठीक नहीं? हो सकता है यही ठीक हो। लेकिन बनावटी मौनसे कोई फायदा नहीं। मौनकी जीती-जागती आवाजके लिए तो बड़ी भारी साधनाकी जरूरत है। उसके अभावमें हृदयगत रामनामकी पहचान क्या है, इस पर हम गौर करें।

एक वाक्यमें कहा जाय तो रामके भक्त और गीताके स्थितप्रज्ञमें कोई भेद नहीं है। ज्यादा गहरे उतरें तो हम देखेंगे कि रामभक्त पंच महाभूतोंका सेवक होगा। वह कुदरतके कानून पर चलेगा; इसलिए उसे किसी तरहकी बीमारी होगी ही नहीं। होगी भी तो वह उसे पंच महाभूतोंकी मददसे अच्छी कर लेगा। किसी भी उपायसे भौतिक दुःख दूर कर लेना शरीरी — आत्मा — का काम नहीं है; शरीरका काम भले हो। इसलिए जो लोग शरीरको ही आत्मा मानते हैं, जिनकी दृष्टिमें शरीरसे अलग शरीरधारी आत्मा जैसा कोई तत्त्व नहीं, वे तो शरीरको टिकाये रखनेके लिए सारी दुनियामें भटकेंगे। लंका भी जायंगे। इससे उलटे, जो यह मानता है कि आत्मा शरीरमें रहते हुए भी शरीरसे अलग है, हमेशा कायम रहनेवाला तत्त्व है, अनित्य शरीरमें बसता है, वह शरीरकी संभाल तो रखता है, पर शरीरके जानेसे घबराता नहीं, दुःखी नहीं होता और सहज ही उसे छोड़ देता है, वह मनुष्य डॉक्टर-वैद्योंके पीछे नहीं भटकता। वह खुद ही अपना डॉक्टर बन जाता है। सब काम करते हुए भी वह आत्माका ही खयाल रखता है। वह मूर्च्छामें से जागे हुए मनुष्यकी तरह बरताव करता है।

ऐसा मनुष्य हर सांसके साथ रामनाम जपता रहता है। वह सोता है तो भी उसका राम जागता है। खाते-पीते, उठते-बैठते, कुछ भी काम करते हुए राम तो उसके साथ ही रहेगा। इस साथीका खो जाना ही मनुष्यकी सच्ची मृत्यु है।

इस रामको अपने पास रखनेके लिए या अपने-आपको रामके पास रखनेके लिए वह पंच महाभूतोंकी मदद लेकर सन्तोष मानेगा। यानी वह मिट्टी, हवा, पानी, सूरजकी रोशनी और आकाशका सहज, स्वच्छ और व्यवस्थित तरीकेसे उपयोग करके जो पा सकेगा उसमें सन्तोष मानेगा। यह उपयोग रामनामका पूरक नहीं है, पर रामनामकी साधनाकी निशानी है। रामनामको इनकी मददकी जरूरत नहीं है। लेकिन इसके बदले जो एकके बाद दूसरे वैद्य-हकीमोंके पीछे दौड़े और रामनामका दावा करे, उसकी बात कुछ जंचती नहीं।

एक ज्ञानीने तो मेरी बात पढ़कर यह लिखा है कि रामनाम ऐसा कीमिया है, जो शरीरको बदल डालता है। वीर्यको एकत्र करना संग्रह करके रखे हुए धनके समान है। उसमें से अमोघ शक्ति पैदा करनेवाला तो रामनाम ही है। खाली संग्रह करनेसे तो घबराहट होती है। किसी समय उसका पतन हो सकता है। लेकिन जब रामनामके स्पर्शसे वह वीर्य गतिमान होता है, ऊर्ध्वगामी बनता है, तब उसका पतन असंभव हो जाता है।

शरीरके पोषणके लिए शुद्ध रक्त जरूरी है। आत्माके पोषणके लिए शुद्ध वीर्यशक्तिकी जरूरत है। इसे दिव्य शक्ति कह सकते हैं। यह शक्ति सारी इन्द्रियोंकी शिथिलताको मिटा सकती है। इसीलिए कहा गया है कि रामनाम हृदयमें बैठ जाय, तो नया जीवन शुरू होता है। यह कानून जवान-बूढ़े, पुरुष—स्त्री सबको लागू होता है।

पश्चिममें भी यह नियम पाया जाता है। क्रिश्चियन-सायन्स नामका सम्प्रदाय बिलकुल यही नहीं, तो करीब-करीब इसी तरहकी बात कहता है। लेकिन मैं मानता हूं कि हिन्दुस्तानको ऐसे सहारेकी

जरूरत नहीं है, क्योंकि हिन्दुस्तानमें तो यह दिव्य विद्या पुराने जमानेसे चली आ रही है।

हरिजनसेवक, २९–६–'४७

प्रश्न — आपके सुझावके अनुसार रामनामका — सच्चिदानन्दके नामका — मेरा जप चालू है और उससे मेरी क्षयकी बीमारीमें सुधार भी होने लगा है। यह सही है कि साथमें डॉक्टरी इलाज भी चल रहा है। लेकिन आप कहते हैं कि युक्ताहार और मिताहारसे मनुष्य बीमारियोंसे दूर रहकर अपनी उमर बढ़ा सकता है। मैं तो पिछले २५ बरससे मिताहारी रहता आया हूं, फिर भी आज ऐसी बीमारीका भोग बना हुआ हूं। इसे क्या पूर्वजन्मका या इस जन्मका दुर्भाग्य कहा जाय?

आप यह भी कहते हैं कि मनुष्य १२५ बरस तक जी सकता है। स्वर्गीय महादेवभाईकी आपको बड़ी जरूरत थी, यह जानते हुए भी भगवानने उन्हें उठा लिया। युक्ताहारी और मिताहारी महादेवभाई आपको ईश्वर-स्वरूप मानकर जीते थे, फिर भी वे खूनके दबावकी बीमारी (ब्लड-प्रेशर)के शिकार बनकर सदाके लिए चल बसे। भगवानका अवतार माने जानेवाले रामकृष्ण परमहंस क्षयके जैसी कैन्सरकी खतरनाक बीमारीके शिकार हो कर कैसे मर गये? वे कैन्सरका सामना क्यों न कर सके?

उत्तर — मैं तो स्वास्थ्यकी रक्षाके जो नियम खुद जानता हूं वही बताता हूं। लेकिन मिताहार या युक्ताहार किसे माना जाय, यह हर आदमीको जानना चाहिये। इस बारेमें जिसने बहुतसा साहित्य पढ़ा हो और बहुत विचार किया हो, वह खुद भी इसे जान सकता है। लेकिन इसके यह मानी नहीं कि ऐसा ज्ञान या जानकारी शुद्ध और पूर्ण है। इसीलिए कुछ लोग जीवनको प्रयोगशाला कहते हैं। कई लोगोंके प्रयोगोंको इकट्ठा करना चाहिये और उनमें से जानने लायक बातको लेकर आगे बढ़ना चाहिये। लेकिन ऐसा करते हुए अगर सफलता न मिले, तो भी किसीको दोष नहीं दिया जा सकता। खुदको भी दोषी

नहीं कहा जा सकता। नियम गलत है, यह कहनेकी भी एकदम हिम्मत नहीं करनी चाहिये। लेकिन अगर हमारी बुद्धिको कोई नियम गलत मालूम हो, तो सही नियम कौनसा है यह बतानेकी शक्ति अपनेमें पैदा करके उसका प्रचार करना चाहिये।

आपकी क्षयकी बीमारीके कई कारण हो सकते हैं। यह भी कौन कह सकता है कि पंच महाभूतोंका आपने सही-सही उपयोग किया है या नहीं? इसलिए जहां तक मैं कुदरतके नियमोंको जानता हूं और उन्हें सही मानता हूं, वहां तक मैं तो आपसे यही कहूंगा कि आपने कहीं न कहीं पंच महाभूतोंका उपयोग करनेमें भूल की है। महादेव और रामकृष्ण परमहंसके बारेमें आपने जो शंका उठाई, उसका जवाब भी मेरी ऊपरकी बातमें आ जाता है। कुदरतके नियमको गलत कहनेके बजाय यह कहना ज्यादा युक्तिसंगत मालूम होता है कि उन्होंने भी कहीं न कहीं भूल की होगी। नियम कोई मेरा बनाया हुआ नहीं है, वह तो कुदरतका नियम है; कई अनुभवी लोगोंने यह कहा है। और इसी बातको मानकर मैं चलनेकी कोशिश करता हूं। मनुष्य आखिर अपूर्ण प्राणी है। और कोई अपूर्ण मनुष्य इसे कैसे जान सकता है? डॉक्टर इसे नहीं मानते। मानते भी हैं तो इसका दूसरा अर्थ करते हैं। इसका मुझ पर कोई असर नहीं होता। नियमका ऐसा समर्थन करने पर भी मेरे कहनेका यह मतलब नहीं होता और न निकाला जाना चाहिये कि इससे ऊपर बताये किसी व्यक्तिका महत्त्व कम होता है।

हरिजनसेवक, ४–८–'४६

सेवाग्राम आश्रमके एक कार्यकर्ताका उल्लेख करके, जिनका दिमाग खराब हो गया था, जो हिंसक व्यवहार करने लगे थे और इसलिए जिन्हें जेलमें रखना पड़ा था, गांधीजीने कहा: "ये भाई एक अच्छे सेवक हैं। पिछले साल तन्दुरुस्त होनेके बाद वे आश्रमके बगीचेका काम देखते थे और दवाखानेका हिसाब रखते थे। वे लगनके साथ अपना काम करते थे और उसीमें मगन रहते थे। फिर उन्हें मलेरिया हो गया और उसके लिए उनको कुनैनका इंजेक्शन दिया गया; क्योंकि

खाने या पीनेके बजाय सुईके जरिये कुनैन लेनेसे वह सीधी खूनमें मिल जाती है और जल्दी असर करती है। इन भाईका यह खयाल हो गया है कि इंजेक्शन उनके दिमागमें चढ़ गया है और उसीका दिमाग पर इतना बुरा असर हुआ है। आज सुबह जब मैं कमरेमें बैठा काम कर रहा था, तो मैंने देखा कि वे बाहर खड़े चिल्ला रहे हैं और हवामें इधर-उधर हाथ उछालते हुए घूम रहे हैं। मैं बाहर निकलकर उनके साथ घूमने लगा। इससे वे शान्त हुए। लेकिन जैसे ही मैं उनसे अलग होकर अपनी जगह पर लौटा, वे फिर अपने दिमागका संतुलन खो बैठे और किसीके बसके न रहे। जब वे बिफरते हैं तो किसीकी बात नहीं सुनते। इसीलिए उनको जेल भेज देना पड़ा।

"स्वभावतः मुझे इस विचारसे तकलीफ होती है कि हमें अपने ही एक सेवकको जेलमें भेजना पड़ा है। इस पर कोई मुझसे यह पूछ सकता है — 'आप दावा करते हैं कि रामनाम सब रोगोंका रामबाण इलाज है, तो फिर आपका वह रामनाम कहां गया?' यह सच है कि इस मामलेमें मैं असफल रहा हूं; फिर भी मैं कहता हूं कि रामनाममें मेरी श्रद्धा ज्योंकी त्यों बनी हुई है। रामनाम कभी निष्फल नहीं हो सकता। निष्फलताका मतलब तो यही है कि हममें कहीं कोई दोष है। इस निष्फलताका कारण हमें अपने अन्दर ही ढूंढ़ना चाहिये।"

हरिजनसेवक, १–९–'४६

प्रार्थना-प्रवचनोंसे

आजके अपने भाषणमें गांधीजीने बताया कि किस तरह मनुष्यको सतानेवाली तीनों तरहकी बीमारियोंके लिए अकेले रामनामको ही रामबाण इलाज बनाया जा सकता है। उन्होंने कहा: "इसकी पहली शर्त तो यह है कि रामनाम हृदयके भीतरसे निकलना चाहिये। जब तक आदमी अपने अन्दर और बाहर सचाई, ईमानदारी और पवित्रताके गुणोंको नहीं बढ़ाता, तब तक रामनाम उसके हृदयसे नहीं निकल सकता। हम लोग रोज शामकी प्रार्थनामें स्थितप्रज्ञका वर्णन करनेवाले

श्लोक पढ़ते हैं। हममेंसे हरएक आदमी स्थितप्रज्ञ बन सकता है, बशर्ते वह अपनी इन्द्रियोंको अपने वशमें रखे और जीवनको सेवामय बनानेके लिए ही खाये, पिये और मौज-शौक या हंसी-विनोद करे। उदाहरणके लिए, अगर अपने विचारों पर आपका कोई नियंत्रण नहीं है और अगर आप एक तंग अंधेरी कोठरीमें उसकी तमाम खिड़कियां और दरवाजे बन्द करके सोनेमें कोई हर्ज नहीं समझते और गन्दी हवा लेते हैं या गन्दा पानी पीते हैं, तो मैं कहूंगा कि आपका रामनाम लेना बेकार है।

"लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि चूंकि आप जितने चाहिये उतने पवित्र नहीं हैं, इसलिए आपको रामनाम लेना छोड़ देना चाहिये; क्योंकि पवित्र बननेके लिए भी रामनाम लेना लाभकारी है। जो आदमी हृदयसे रामनाम लेता है, वह आसानीसे अपने-आप पर नियंत्रण रख सकता है और अनुशासनमें रह सकता है। उसके लिए तन्दुरुस्ती और सफाईके नियमोंका पालन करना सरल हो जायगा। उसका जीवन सहज भावसे बीत सकेगा — उसमें कोई विषमता न होगी। वह किसीको सताना या दुःख पहुंचाना पसन्द नहीं करेगा। दूसरोंके दुःखोंको मिटानेके लिए, उन्हें राहत पहुंचानेके लिए खुद तकलीफ उठा लेना उसकी आदतमें आ जायगा और उसको सदा अमिट सुखका लाभ मिलेगा — उसका मन शाश्वत और अमर सुखसे भर जायगा। इसलिए मैं कहता हूं कि आप इस कोशिशमें लगे रहिये और जब तक काम करते हैं तब तक सारा समय मन ही मन रामनाम लेते रहिये। इस तरह करनेसे एक दिन ऐसा भी आयेगा, जब रामनाम आपका सोते-जागतेका साथी बन जायगा और उस हालतमें आप ईश्वरकी कृपासे तन, मन और आत्मासे पूरे-पूरे स्वस्थ और तन्दुरुस्त बन जायंगे।"

नई दिल्ली, २५–५–'४६

मुझे अपने मित्रोंकी तरफसे कई पत्र और सन्देश मिले हैं, जिनमें मेरी हमेशा बनी रहनेवाली खांसीके बारेमें चिन्ता प्रगट की गई है। जैसे मेरे भाषणकी बातें फैल गईं, उसी तरह मेरी खांसीकी बात भी फैल गई, जो शामको खुलेमें अकसर मुझे तकलीफ देती है। फिर भी, पिछले चार

दिनोंसे खांसी मुझे कम तकलीफ दे रही है और आशा है कि वह जल्दी ही पूरी तरह मिट जायगी। मेरी खांसीके लगातार बने रहनेका कारण यह है कि मैंने कोई भी डॉक्टरी इलाज करानेसे इनकार कर दिया है। डॉ० सुशीला नय्यरने मुझसे कहा कि अगर आप शुरूमें ही पेनिसिलिन ले लेंगे तो आप तीन ही दिनोंमें अच्छे हो जायेंगे, वर्ना खांसीके मिटनेमें तीन हफ्ते लग जायेंगे। मुझे पेनिसिलिनके असरकारी होनेमें कोई शक नहीं है। लेकिन मेरा यह भी विश्वास है कि रामनाम ही सारी बीमारियोंका सबसे बड़ा इलाज है। इसलिए वह सारे इलाजोंसे ऊपर है। आज चारों तरफसे मुझे घेरनेवाली (कौमी) आगकी लपटोंके बीच तो भगवानमें जीती-जागती श्रद्धाकी मुझे सबसे बड़ी जरूरत है। वही लोगोंको इस आगको बुझानेकी शक्ति दे सकता है। अगर भगवानको मुझसे काम लेना होगा तो वह मुझे जिन्दा रखेगा, वर्ना मुझे अपने पास बुला लेगा।

आपने अभी जो भजन सुना है, उसमें कविने मनुष्यको कभी रामनाम न भूलनेका उपदेश दिया है। भगवान ही मनुष्यका एक-मात्र आसरा है। इसलिए आजके संकटमें मैं अपने-आपको पूरी तरह भगवानके भरोसे छोड़ देना चाहता हूं और शरीरकी बीमारीके लिए किसी तरहकी डॉक्टरी मदद नहीं लेना चाहता।

नई दिल्ली, १८–१०–'४७

रोजके विचार

बीमारी-मात्र मनुष्यके लिए शरमकी बात होनी चाहिये। बीमारी किसी न किसी दोषकी सूचक है। जिसका तन और मन सर्वथा स्वस्थ है, उसे बीमारी होनी ही नहीं चाहिये।

सेवाग्राम, २६–१२–'४४

विकारी विचार भी बीमारीकी निशानी है। इसलिए हम सब विकारी विचारसे बचते रहें।

सेवाग्राम, २७–१२–'४४

विकारी विचारोंसे बचनेका एकमात्र अमोघ उपाय रामनाम है। रामनाम कंठसे ही नहीं, किन्तु हृदयसे निकलना चाहिये।

सेवाग्राम, २८–१२–'४४

व्याधि अनेक हैं, वैद्य अनेक हैं, उपचार भी अनेक हैं। अगर हम सारी व्याधिको एक ही मानें और उसका मिटानेवाला वैद्य एक राम ही है ऐसा समझें, तो हम बहुतसी झंझटोंसे बच जायं।

सेवाग्राम, २९–१२–'४४

आश्चर्य है कि वैद्य भी मरते हैं, डॉक्टर भी मरते हैं, फिर भी उनके पीछे हम भटकते हैं। लेकिन जो राम मरता नहीं है, हमेशा जिन्दा रहता है और अचूक वैद्य है, उसे हम भूल जाते हैं!

सेवाग्राम, ३०–१२–'४४

इससे भी ज्यादा आश्चर्य यह है कि हम जानते हैं कि हम भी मरनेवाले हैं ही, बहुत करें तो वैद्य आदिकी दवासे शायद हम थोड़े दिन और काट सकते हैं, फिर भी ख्वार होते (अपार कष्ट भोगते) हैं।

सेवाग्राम, ३१–१२–'४४

इसी तरह बूढ़े, जवान, बच्चे, धनिक, गरीब सबको मरते हुए देखते हैं, तो भी हम संतोषसे बैठना नहीं चाहते और थोड़े दिन ज्यादा जीनेके लिए रामको छोड़ दूसरे सब प्रयत्न करते हैं।

सेवाग्राम, १–१–'४५

कैसा अच्छा हो कि इतना समझ कर हम रामके भरोसे रहकर जो भी व्याधि आवे उसे बरदाश्त करें और अपना जीवन आनन्दमय बनाकर व्यतीत करें!

सेवाग्राम, २–१–'४५

अगर धार्मिक माना जानेवाला मनुष्य रोगसे दुःखी हो, तो समझना चाहिये कि उसमें किसी न किसी चीजकी कमी है।

सेवाग्राम, २२–४–'४५

मैं जितना ज्यादा विचार करता हूं, उतना ही ज्यादा यह महसूस करता हूं कि ज्ञानके साथ हृदयसे लिया हुआ रामनाम सारी बीमारियोंकी रामबाण दवा है।

उरुली, २२–३–'४६

बीमारीसे जितनी मौतें नहीं होतीं, उससे ज्यादा बीमारीके डरसे हो जाती हैं।

शिमला, ७–५–'४६

कुदरती इलाज हमें ईश्वरके ज्यादा नजदीक ले जाता है। अगर हम उसके बिना भी काम चला सकें, तो मैं उसका कोई विरोध नहीं करूंगा। लेकिन उपवाससे हम क्यों डरें या शुद्ध हवासे क्यों बचें? कुदरती इलाजका मतलब है कुदरत — ईश्वर — के ज्यादा नजदीक जाना।

गांधीजीके एक पत्रसे, सेवाग्राम, ९–१–'४५

परिशिष्ट–क

कुछ पत्रोंके महत्त्वपूर्ण उद्धरण

[उरुलीकांचन उपचार-केन्द्रके व्यवस्थापकोंको सन् १९४६ और १९४७ में गांधीजी द्वारा लिखे गये पत्रोंसे लिये हुए भाग नीचे दिये जाते हैं।]

१

आप जितने रोगियोंकी सुचारु रूपसे सार-संभाल कर सकें, उतने ही रोगियोंको रखें। हमारा मुख्य ध्येय तो बीमारीकी रोकथाम करना है। यदि हम लोगोंको बीमारीसे मुक्त रहनेका शिक्षण वहां दे सकें, तो मैं हमारे कुदरती उपचारको पूर्ण ही मानूंगा। इसलिए आप वहां सभीको — बालकों, बालिकाओं और बड़ोंको — हमारा दृष्टिकोण समझाइये।

★

यदि एक भी रोगी केन्द्रमें न आये, तो आप चिंता न कीजिये। हमें लोगोंके घरोंमें जाना चाहिये और उन्हें स्वच्छताके पाठ सिखाने चाहिये। स्वच्छता सिखानेके लिए हम पाठशालाओंमें भी जा सकते हैं। आप अपना प्रत्येक क्षण इस काममें लगाइये। स्वच्छता मुख्य चीज है, जिसे हमें लोगोंको सिखाना है; क्योंकि इसमें अन्य अधिकांश बातें आ जाती हैं।

★

यह खुशीकी बात है कि आपका कार्य सुचारु रूपसे आगे बढ़ रहा है। अपने कार्यको सतत आगे बढ़ानेके लिए हमें क्षेत्र-संन्यास लेनेकी आवश्यकता भी रहती है।

★

कोई भी अच्छा काम एक दिनमें तो नहीं किया जा सकता। यदि वह एक ही दिनमें हो जाता है, तो उसकी कोई कीमत नहीं रह जाती। हमें धीरजका अभ्यास करना चाहिये और धीरजके अभ्यासके लिए हमें अनासक्तिका विकास करना चाहिये। जहां अनासक्ति होती है वहां अच्छे कामका अच्छा ही परिणाम होता है ऐसी मेरी अटल श्रद्धा है। इसलिए आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप परिणामोंके बारेमें चिंता न कीजिये। जैसे हम यह भलीभांति जानते हुए चितासे मुक्त रहते हैं कि कल सूरज उगेगा ही, उसी प्रकार हमें प्रत्येक अच्छे कार्यके बारेमें निश्चिन्त रहना चाहिये। कोई दिन ऐसा तो हो सकता है जब सूरज न उगे, लेकिन कोई ऐसा दिन कभी नहीं आयेगा जब अच्छे कामका नतीजा अच्छा न निकले। इसलिए हमें इस श्रद्धासे अपने काममें लगे रहना चाहिये कि किसी न किसी दिन लोग उसे जरूर समझने लगेंगे।

★

उरुलीमें होनेवाला काम यदि लगातार और ठोस रूपमें होगा, तो उससे मुझे संतोष होगा। यदि कामकी प्रगति धीमी रहे, तो भी आप चिंता न कीजिये।

★

बच्चे दूधके बिना नहीं रहने चाहिये। यह निश्चित रूपसे वांछनीय है कि वहां कुछ गायें रखी जायें।

★

मुझे इसमें सन्देह है कि हम दूधके बिना अपना काम चला सकते हैं। खुद अपने पर ही इसका प्रयोग किये बिना इस विषयमें किसी नतीजे पर पहुंचना कठिन है। जो दूधके बिना अच्छी तरह रह सके, उस पर आप अपना प्रयोग जरूर कर सकते हैं।

★

यदि कोई पूर्णान्नके साथ घी और दूध लेता है, तो इसमें कोई नुकसान नहीं है। यदि कोई दूधके बिना ही काम चला ले, तो यह अलग बात है और यह बड़ी सफलता भी है। लेकिन मुझे डर है कि यह संभव नहीं है।

★

पूर्णान्नका विचार मुझे बहुत पसन्द है। मैं खुद ही इसका प्रयोग करना चाहता हूं। यदि मैं इसमें सफल रहा, तो मैं भारी झंझटोंसे मुक्त हो सकूंगा। लेकिन खेद है कि मैं अभी तक यह प्रयोग नहीं कर सका हूं।

★

सुबह कांजी लेनेके बजाय घर पर तैयार किये हुए बिस्कुट, जिन्हें चबानेकी जरूरत रहती है, और फल लेना शायद ज्यादा अच्छा होगा। आप इसके तुरन्त बाद या दोपहरमें दूध ले सकते हैं। लेकिन यह तो मेरा सुझाव-मात्र है।

★

आप आमकी गुठलियोंका संग्रह करते हैं और उनको काममें लाते हैं, या आप उन्हें फेंक देते हैं?

★

क्या डॉ० भागवत भोजन-सम्बन्धी प्रयोग कर रहे हैं? यहां तो पानी शुद्ध होता ही नहीं। क्या वे उसे शुद्ध करनेके लिए कोई आसान साधन सुझा सकते हैं?

★

पाखानोंके साथ अच्छे सैप्टिक टैंक रखनेमें मैं कोई हानि नहीं देखता हूं। आपको सिर्फ इतना समझ लेना चाहिये कि यदि वे अच्छी तरहसे तैयार नहीं किये गये या उनकी संतोषप्रद देखभाल नहीं की गई, तो वे खतरनाक साबित होंगे।

★

जिस टबमें किसी रोगीने स्नान किया हो उसे अंगारों जितनी गरम राखसे शुद्ध कर लिया गया हो, तो वह टब दूसरोंके उपयोगके लायक हो जाता है; फिर चाहे रोगीको कैसा भी छूतवाला रोग क्यों न हो। मैं खुद ही ऐसे टबमें स्नान करनेमें नहीं हिचकूंगा।

★

तख्तोंके अभावमें आप मोटे बांसोंको जोड़ सकते हैं; वे तख्तोंकी तरह चलनेमें काम देंगे। यह बहुत सस्ता भी रहेगा और पुलका काम भी देगा। ऐसे तख्तों या बांसोंके बिना खड्डे बेकार हैं। हम लोहेकी पुरानी पटरियां भी तख्तोंके स्थान पर काममें ले सकते हैं।

★

यदि सारी जमीनकी रजिस्ट्री मेरे नाम करवाई गई हो, तो यह उचित बात नहीं है। यदि मुझे जमीनके ट्रस्टियोंमें से एक घोषित किया गया हो, तो मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है। यदि जमीनकी रजिस्ट्री मेरे नाम पर की गई है और मैं मर जाऊं, तो इससे बादमें उलझनें पैदा होंगी। वैसी परिस्थितिमें आप मेरे इस पत्रको काममें ले सकते हैं और इसमें से पैदा होनेवाले सारे झगड़ोंको निबटा सकते हैं। तब आप यह कह सकते हैं कि जमीन मेरी निजकी नहीं है, यह तो उरुलीकांचनके गरीब निवासियोंके स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए उपयोगमें लाने और इससे सम्बन्धित अन्य सभी कामोंके लिए है।

★

यदि (उरुलीकांचनके) ट्रस्टको पूना ट्रस्टका एक भाग माना गया हो, तो कोई हर्ज नहीं है; और यदि वह एक स्वतंत्र ट्रस्ट रहे, तो भी कोई बात नहीं है। यदि उसे एक उप-ट्रस्ट माना गया हो, तो भी उसमें गांवके लोगोंका स्थान होना चाहिये। और वे क्या चाहते हैं यह भी हमें पहलेसे जान लेना चाहिये।

★

गोसेवाका काम इस ट्रस्टमें शामिल नहीं किया जा सकता। आप गोसेवाका काम गोसेवा-संघके जरिये कर सकते हैं; नहीं तो

जिस काममें आप लगे हुए हैं, वह यों ही धरा रह जायेगा। शक्तिसे बाहर काम करनेकी कोशिश करनेसे दोनों ही कामोंको नुकसान पहुंचनेका अन्देशा है। अथवा यदि वहां कोई गायोंके विषयमें जानता हो, तो उसकी सलाहसे आप यह काम कर सकते हैं। आपको तो प्रयत्न करके आरोग्य-भवनको स्वावलम्बी बनाना चाहिये। पैसेकी कमी पूरी कर दी जायेगी। पैसा इकट्ठा करनेके काममें और अधिक लोगोंको लगानेकी जरूरत नहीं है। एक बार आपके निर्णय ज्ञात हो जानेके बाद पैसा प्राप्त किया जा सकेगा। कुएंकी आवश्यकता तो है ही। कुआं खुदवा लिया जाय। आपका कहना है कि पाताल कुआं रु० ४००० में तैयार हो सकेगा। मेरा अपना झुकाव पाताल कुएंकी ओर है; या हम इसके लिए सेना द्वारा अपनाये गये तरीकोंका अनुकरण करके वाटर-वर्क्स बनवा सकते हैं। और जिस तरह वे उन्हें काममें लाते हैं, वैसे ही हम भी ला सकते हैं। मुझे विश्वास है कि हम उनके वाटर-वर्क्ससे भी काफी पानी प्राप्त कर सकते हैं। अपनी गायोंकी योजनामें हम भैंसोंको कोई स्थान नहीं दे सकते। यदि हम गायोंका आग्रह नहीं रखेंगे, तो वे जरूर मर जायेंगी और बादमें भैंसें भी मर जायेंगी। पशु-पालनके विशारद अन्तमें इसी निर्णय पर पहुंचे हैं।

★

यदि आप संस्थाकी ओरसे मजदूरोंको मजदूरी पर लगाकर खेती करेंगे, तो मुझे विश्वास है कि आप संकटमें आ पड़ेंगे। यह मेरी राय है। लेकिन आपसी विचार-विमर्शके बाद आपका जो अन्तिम निश्चय होगा, वह मुझे स्वीकार होगा और उस पर मैं अपनी स्वीकृति दे दूंगा।

★

आप दूसरोंके साथ भागीदारी रखकर खेतीका काम करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन हम बैलों और ऐसे ही दूसरे साधनोंके लिए उन्हें पैसे उधार नहीं दे सकते। हम पूंजीपति नहीं हैं, लेकिन ट्रस्टी हैं। और ट्रस्टी भी एक विशेष कार्यके लिए ही हैं। हमारा ध्येय तो कुदरती उपचारको प्रोत्साहन देना है। इसलिए हम ऐसा खर्च नहीं

कर सकते। खेतीमें हम केवल व्यक्तिगत श्रमके आधार पर जो कुछ संभव हो वह कर सकते हैं। पानी हर प्रकारसे अनिवार्य है। इस पर होनेवाला खर्च उचित कहा जा सकता है। बेशक, हमें यह विश्वास होना चाहिये कि यदि ट्यूब-वेल हो जायेगा, तो पानी सुलभ हो सकेगा। हम अपने हाथोंसे हो सकने लायक बुवाई कर सकते हैं। हम अपनी आवश्यकताकी साग-सब्जी या फल तो पैदा कर सकते हैं, लेकिन अनाज पैदा नहीं कर सकते। दूध तो अनिवार्य है, इसलिए यह आवश्यक है कि हम कुछ गाये रखें। ऐसे खर्चोंको हम टाल नहीं सकते।

★

मुझे लगता है कि (उरुलीका) काम स्वतंत्र रूपसे चलता रहे यह ज्यादा अच्छा है। (पूना ट्रस्टका चाहे जो हो, परन्तु यह वांछनीय है कि उरुलीका काम चलता रहे।) इसके अलावा, उरुलीके कामकी सारी जिम्मेदारी मणिभाईके कन्धों पर है। इस कारणसे भी यह ट्रस्ट एक स्वतन्त्र ट्रस्ट होना चाहिये।

पुरन्दरका काम भी स्वतंत्र रूपसे चले, तो इसे मैं गलत नहीं मानता। विश्वविद्यालयकी बात ठीक है। लेकिन उसके लिए कार्यकर्ता कहां हैं? अभी न तो कुदरती उपचार सिखानेके लिए कोई शाला है और न कोई कॉलेज है। तब हम कुदरती उपचारके विश्वविद्यालयकी आशा कैसे रख सकते हैं? यदि आप पुरन्दरके काममें भी पूरी तरह लीन हो जायें, तो मुझे नहीं लगता कि इस कारण ट्रस्टको कोई हानि पहुंचेगी। यदि आप कहीं भी कुदरती उपचारके काममें पूरी तरह जुट जायें और सफलतापूर्वक इस कार्यको करते रहें, तो मैं मानूंगा कि जो भी काम आप कर रहे हैं वह ट्रस्टका ही काम है। आप चाहे जिस प्रकारसे कुदरती उपचारमें सफल हों, ट्रस्टको तो उससे लाभ ही होगा।

★

आप उरुलीके लिए एक स्थानीय ट्रस्ट, जो मुख्य (पूना) ट्रस्टसे स्वतंत्र हो, रख सकते हैं। यदि उरुलीका एक स्वतंत्र ट्रस्ट हो, तो

ही आप ट्रस्टके नियमोंके अन्तर्गत ग्राम-सुधारकी प्रवृत्तियोंको चलानेमें स्वतंत्र रहेंगे। इन प्रवृत्तियोंमें कृषि, गोपालन, बुनाई, तेलघानी वगैरा शामिल की जा सकती हैं। कुदरती उपचारको इन प्रवृत्तियोंका एक भाग होना चाहिये। मैं स्थानीय कार्यकर्ताओं पर यह निर्णय करनेका काम छोड़ता हूं कि इसे स्वतंत्र ट्रस्ट रखा जाय या मुख्य (पूना) ट्रस्टके एक भागके रूपमें रखा जाय। यदि आपकी इच्छा इसे स्वतंत्र ट्रस्टके रूपमें रखनेकी है, तो आपको आत्म-निर्भर होनेके लिए तथा सभी कार्योंको जिम्मेदारीकी पूरी भावनासे करनेके लिए तैयार रहना चाहिये। यदि यह ट्रस्ट मुख्य (पूना) ट्रस्टका भाग हो रहे तो आप केवल मुख्य ट्रस्टके नियमानुसार ही काम कर सकते हैं। उस हालतमें आप ग्राम-सुधारकी प्रवृत्तियोंको हाथमें नहीं ले सकते।

कृषि, गो-पालन, तेलघानी वगैराको यदि ट्रस्टके नियमोंके अन्तर्गत चलानेकी आपकी इच्छा हो, तो उन्हें स्वावलम्बी बनाना चाहिये। आपको ये सारे काम चलानेके लिए पूरी तरह तैयार होना चाहिये। मुझे खुशी होगी यदि आप बैलके बिना अपनी सारी प्रवृत्तियां चला सकें। स्थानीय लोगोंको गोसेवा करनेके लिए तैयार करना चाहिये। निश्चित रूपसे हमारे ये कार्य पूंजीवादी पद्धतिके आधार पर नहीं होने चाहिये। कृषि, गोसेवा, तेलघानी वगैरा कामोंके लिए आप ऐसे स्थानीय लोगोंको लगा सकते हैं, जो सेवाभावसे प्रेरित हों। आपको उन लोगोंके परिवारोंके अन्य सदस्योंको भी काम पर लगाना चाहिये। ऑइल एंजिनका उपयोग बेशक त्याज्य होगा।

यदि गांवके रोगी अस्पतालोंसे लाभ न उठायें, तो गांवसे बाहरके रोगियोंको उनमें दाखिल किया जा सकता है। लेकिन गांवके रोगियोंको पहला स्थान मिलना चाहिये और उनके उपचारका खर्च संस्थाको उठाना चाहिये। बाहरके रोगियोंको उपचारका खर्च खुद देना चाहिये।

उपचार सबके लिए आसान होना चाहिये। यह बात ट्रस्टके दस्तावेज (डीड)में लिखी जानी चाहिये। बाहरसे आनेवाले पुरुष या स्त्री कार्यकर्ता यदि काम करनेकी इच्छा रखते हों, तो वे सेवाकी

भावनासे ऐसा कर सकते हैं। उन्हें किसी प्रकारका वेतन नहीं दिया जा सकता। नौकर तो गांवसे ही प्राप्त किये जाने चाहिये और उन्हें तनख्वाह दी जानी चाहिये। दससे बारह वर्षके बालकोंको तनख्वाह देकर काम पर लगाया जा सकता है। उन्हें वर्धा-पद्धतिसे शिक्षा देनी चाहिये। कुछ सेवाभावी कार्यकर्ताओंको बाहरसे प्राप्त करना चाहिये। गांवके कार्यकर्ताओं और बच्चोंको तालीम देनेके प्रयत्न किये जाने चाहिये। रोगियोंको संस्थाकी क्षमताके अनुसार ही दाखिल करना चाहिये। कार्यकर्ताओंको आश्रमके नियमोंका पालन करना ही होगा। नौकरोंके लिए आसान नियम बनाये जा सकते हैं। अस्पतालके साधन बहुत ही सादे होने चाहिये। वे गांवमें ही तैयार कर लिये जायें तो बहुत अच्छा। भट्ठीमें पकी मिट्टीसे बने हुए कूंडे टबका काम दे सकते हैं। टब तो टीनके भी तैयार किये जा सकते हैं। पलंगके स्थान पर लकड़ीके तख्ते, जिन्हें ईंटोंका सहारा दिया गया हो, काममें लाये जा सकते हैं। लेकिन ये तो मेरे सुझावमात्र हैं।

मेरा विश्वास है कि किसी भी उपचारमें मांसका उपयोग नहीं हो सकता। यह मैं धार्मिक दृष्टिसे नहीं कह रहा हूं। काढ़ा चायका काम दे सकता है। साधारण कॉफीकी जगह गेहूंके आटेसे तैयार की हुई कॉफी काममें लानी चाहिये। रोगियोंको बीड़ी कभी नहीं देनी चाहिये। यदि इस कारणसे रोगी न आयें, तो चिन्ता न की जाय। हमें लोगोंको इस बारेमें समझाना चाहिये। जो रोगी क्षय जैसी भयंकर बीमारीसे पीड़ित हैं, उन्हें तभी दाखिल किया जाय जब उनके लिए अलगसे प्रबन्ध किया जा सके। शहद मधुमक्खीको मारे बिना (मधुमक्खी-पालनकी पद्धतिसे) गांवमें ही तैयार करना चाहिये। आप मधुमक्खी-पालनका काम संस्थामें चला सकते हैं। गांवमें गायका दूध और गायका घी मिलनेकी व्यवस्था भी की जानी चाहिये। जब गायका दूध सुलभ न हो तो रोगियोंको भैंसका या बकरीका दूध दिया जा सकता है।

आवश्यकता होने पर स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए अतिरिक्त खर्च भी उठाया जा सकता है। प्रत्येक आश्रमवासीको कमसे कम सात घण्टे

काम करना चाहिये। आश्रमवासी अपने लिए अलग-अलग भोजन बनायें, यह मुझे नापसन्द है।

★

धीरे-धीरे आप उरुलीसे ही कार्यकर्ता प्राप्त करने योग्य हो जायेंगे। यदि आप हमेशा ही बाहरके कार्यकर्ताओं पर निर्भर रहें, तो इसे मैं आपके काममें दोष मानूंगा — कुदरती उपचारके काममें एक खामी समझूंगा।

यदि आप उतने ही रोगियोंको लें जितनोंका उपचार आप कर सकें, तो फिर आप पर कामका भार नहीं रहेगा। यदि छोटी उमरके नौजवान स्वयंसेवकोंकी तरह आगे आयें, तो आप उन्हें इस कामकी तालीम दे सकते हैं। आपको एक स्त्री-कार्यकर्ताकी बाहरसे आवश्यकता पड़ेगी। लेकिन आप वहां केवल अपने प्रयत्नसे किसीको बाहरसे नहीं खींच सकेंगे। देखें भविष्य क्या करता है?

★

मैं प्राथमिक शिक्षकोंके लिए कुदरती उपचार-सम्बन्धी शिविरके आपके विचारको पसन्द करता हूं। आपकी यह शर्त बिलकुल ठीक है कि इसमें पैसेका नुकसान नहीं होना चाहिये।

★

यदि प्रेमाबहन कस्तूरबा निधि*की ओरसे वहां कुछ काम कर सके तो वह उत्तम होगा। लेकिन इस सम्बन्धमें हम कोई आर्थिक जिम्मेदारी नहीं उठा सकते। इसलिए उसे वही कार्य करना चाहिये, जो कस्तूरबा निधिकी मर्यादामें आ सकता हो।

★

अन्तमें तो गांवको ही कुदरती उपचारका सारा खर्च उठा लेना चाहिये। यदि वह ऐसा नहीं कर सके तो हमारे सामने यह सवाल

---

* महात्मा गांधीकी धर्मपत्नी कस्तूरबाकी स्मृतिमें यह कोष एकत्र किया गया था। इसका उपयोग खास तौर पर गांवोंकी स्त्रियों और बालकोंके कल्याणसे संबंधित योजनायें चलानेमें होता है।

रहेगा कि हम वहां स्थायी रूपसे बस सकेंगे या नहीं। हम गांवोंमें बाहरी कोषकी सहायता पर कुदरती उपचारको प्रोत्साहन नहीं दे सकते।

थैलीकी इस भेंटको मैं कम ही महत्त्व देता हूं। मैं तो इस बड़े कार्यमें आपका पूरा-पूरा सहयोग चाहता हूं, जिसे यहां सिद्ध करनेका हमारा इरादा है—और वह कार्य है उरुलीका भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास। इसके लिए सबकी — सभी सम्प्रदायोंके नौजवानों और बूढ़ोंकी, पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंकी — मददकी जरूरत है। हम अपने त्रितापों (भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक) को दूर कर सकते हैं, यदि हम अपने जातियों और पंथोंसे संबन्धित भेदभावोंको छोड़ दें। यदि उरुलीकांचनमें इस ध्येयको हम सिद्ध कर सके, तो हमें भारतके सात लाख गांवोंके उद्धारकी आशा हो सकती है।

२

कुदरती उपचारमें सिर्फ शरीरका ही नहीं, लेकिन मनका भी समावेश होता है। केवल रामनाम ही मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखनेमें सहायक होता है। जो मनुष्य यह उपचार कराना चाहता है, उसे स्वयं विशुद्ध होना चाहिये, श्रद्धावान होना चाहिये और भक्त होना चाहिये। जिसमें इसका अभाव हो उस कुदरती उपचारका मेरे लिए कोई मूल्य नहीं है।

★

ब्रह्मचर्यका मार्ग जितना भव्य है उतना ही कठिन भी है। मनुष्य जितना गहरा इसमें उतरता है, उतना ही अधिक वह इसकी भव्यता, पवित्रता और स्वच्छताका अनुभव करता है। मैं मानता हूं कि प्रत्येक मनुष्यके लिए यह जानना बड़ा महत्त्वपूर्ण है कि इस मार्ग पर कैसे बढ़ा जाये। इस विषयमें अधिक सोचने पर मुझे यह विश्वास हो गया है कि रामनाम (ईश्वरका श्रद्धापूर्वक सतत स्मरण) ही इस मार्ग पर बढ़नेमें सबसे बड़ा सहायक है। लेकिन यह हृदयसे निकलना चाहिये, केवल मुखसे

ही इसका उच्चार नहीं होना चाहिये। बेशक, इसके साथ दूसरोंकी अविरत सेवा जुड़ी होनी चाहिये। भोजनको हमें केवल शरीरको चुकाये जानेवाले आवश्यक भाड़ेके रूपमें मानना चाहिये। वह अच्छी तरह सन्तुलित (युक्ताहार) होना चाहिये। रामनाम इन सबके बदलेमें काम आनेवाला नहीं है, लेकिन ये सब वस्तुएं रामनाममें समा जाती हैं। यह मनुष्यके आत्मगत होनेकी भी एक निशानी है। यह तो स्पष्ट है कि जहां तक सांसारिक कार्योंमें मनुष्यकी आसक्ति रहती है, वहां तक ब्रह्मचर्य सध ही नहीं सकता।

★

मैं ब्रह्मचर्यसे सम्बन्धित प्रश्नोंके उत्तर देनेको तैयार हूं। लेकिन आप यह समझ लीजिये कि आपकी अन्तरात्मासे जो स्फूर्त होता है, वही सत्य है और आपको उसीका अनुसरण करना चाहिये। इस विषयमें विनोबाके लेख सुन्दर हैं। लेकिन जिसे ब्रह्मचर्यकी महिमाका विश्वास हो गया है, उसके लिए रामनाम सबसे बड़ा आधार है; क्योंकि एक बार इसकी महिमा स्वीकार कर लेने पर ब्रह्मचर्य बुद्धिका विषय न रहकर हृदयकी वस्तु बन जाता है। और हृदयका स्वामी राम ही है, ऐसा मुझे तो सदा अनुभव होता ही रहता है। जो रामको अपने स्वामीके रूपमें स्वीकार कर लेता है, वह एक क्षणका भी समय व्यर्थ नहीं जाने देता। यदि आप विचारमें भी ब्रह्मचर्यसे विचलित होते हैं, तो मान लीजिये कि उस क्षण तो आपमें आलस्य घुस ही गया और वह क्षण आपका व्यर्थ गया।

★

कुदरती उपचार, ग्रामसेवा और आश्रम-जीवन मेरे लिए एक ही समग्र कार्यके तीन अंग हैं। कुदरती उपचारकी दृष्टिसे वे अविभाज्य हैं। जब आप कुदरती उपचारकी सबसे ऊंची स्थितिको प्राप्त कर लेते हैं, तो ग्रामसेवा उसमें आ ही जाती है, और गांवोंके बारेमें मैं ऐसे कुदरती उपचारकी कल्पना ही नहीं कर सकता, जो आश्रम-जीवनसे दूर हो।